ओ३म्

सरस्वती आश्रम ग्रन्थमाला नं० ८

आनन्द संग्रह

अर्थात्

पूज्यपाद स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज

के

धर्म्म उपदेशों का संग्रह

संग्रह कर्त्ता—राजपाल

मैनेजर आर्य्य पुस्तकालय व सरस्वती आश्रम
लाहौर ने बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर
में छपवाया ।

द्वितीयावृत्ति २०००

भूमिका ।

प्रिय पाठक ! मुझे यह देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि जो पुस्तक माला मैंने निकालनी आरम्भ की है आर्य्य जनता ने उसका हृदयसे स्वागत किया है। आर्य्य समाज के अन्दर बहुत कम पुस्तकें ऐसी होंगी जिनका इतना आदर और सन्मान हुआ होगा इस मालाका सबसे पहिला मोती सत्य उपदेश माला था जो श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के मनोहर उपदेशों और निबन्धों का सचित्र संग्रह है। आर्य्य पुरुष यह जान कर प्रसन्न होंगे, क्योंकि यह उनके भक्ति भाव और धर्म्म अनुराग का ही परिणाम है कि इसका पहिला संस्करण केवल पांच मास में ही समाप्त हो गया। इस माला का दूसरा मोती "प्राचीन सभ्यता और वैदिक धर्म्म" अर्थात् श्री प्रोफेसर रामदेव जी बी. ए. के विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यानों और निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हुआ और समाप्त हो गया। अब यह तीसरा मोती पाठकों की भेंट किया जाता है इसका पहला संस्करण उर्दू भाषा में गत मास में प्रकाशित किया गया था। बहुत से सज्जनों के अनुरोध से अब इस को आर्य्य भाषा में आर्य्य जनता के सन्मुख उपस्थित किया जाता है मुझे आशा है कि यह पुस्तक भी जो पूज्यपाद स्वा० सर्वदानंद जी महाराज के हृदय से निकले

हुए उपदेशों और लेखों का संग्रह है वैसे ही प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी, और देवियों के लिये भी वैसी ही उपयोगी सिद्ध होगी जैसी कि पुरुषों के लिये ।

आदर्श सन्यासी बतौर एक सन्यासी के

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अपने समय के एक आदर्श संन्यासी हैं, त्याग का भाव जो एक सच्चे संन्यासी में होना चाहिये वह पूर्ण रूप से इन में विद्यमान है। उन की न किसी से विशेष मित्रता न किसी से द्वेष। उन का जीवन इस बात की साक्षि देता है कि उन्होंने राग और द्वेष को जीता हुआ है, कुटिलता और पालिसी इन से कोसों दूर है। निर्भयता जो एक सच्चे संन्यासी का विशेष गुण शास्त्रों ने बताया है वह इन में पाई जाती है। आर्य्य समाज का प्रेम इन के रोम २ में रम रहा है। यद्यपि आयु के वृद्ध हैं परन्तु धार्मिक जोश के लिये आर्य्य समाज का कोई नवयुवक उपदेशक भी उन का मुकाबला नहीं कर सकता। यदि आज बम्बई से उन के व्याख्यानों की रिपोर्ट आती है तो परसों पिशावर में गर्ज रहे हैं। उन की रातें रेल के सफ़र में कटती और दिन उपदेशों में व्यतीत होते हैं। उन्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि अमुक जगह दूर है या अमुक जगह के सफ़र में कष्ट है मान अपमान के भाव को भी उन्हों ने जीत लिया। छोटी से छोटी समाज के उत्सव पर जहां पचास या सौ से अधिक श्रोताओं की उपस्थिति नहीं हो सकती, वे बराबर व्याख्यान देने जाते हैं। उन की आवाज़ में इतनी गर्ज है कि

दस पन्द्रह हज़ार के समूह में सब से अन्तिम पंक्ति में उपदेश सुनता हुआ एक पुरुष जिस को स्वामीजी का चेहरा न दिखाई देता हो नहीं कह सकता कि यह किसी वृद्ध की आवाज़ है। उन के व्याख्यान बहुत सारगर्भित मगर साथ ही अत्यन्त सरल होते हैं और प्रत्येक स्त्री पुरुष की समझ में आ जाते हैं, चाहे वह किसी मत से सम्बन्ध रखता हो। आर्य्य समाज में प्रवेश करने के बाद उनकी आयु का बहुत सा भाग संयुक्त प्रान्त में गुज़रा है और देर तक वही प्रान्त उन के कार्य का क्षेत्र रहा है क्योंकि वह समझते थे कि इस प्रान्त में काम की अधिक आवश्यकता है। अब पिछले तीन सालों से उन्हों ने पंजाब प्रान्त पर कृपा दृष्टि आरम्भ की है ॥

जीवन चरित्र

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज बजवाड़ा ज़िला होश्यारपुर के रहने वाले हैं उनका पहला नाम पं० मूलचंद्र था ॥ उनका जन्म एक ऐसे कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ जिस में कि कई पीढ़ियों से हिकमत (वैद्यक) चली आई है। इसी कारण स्वामी जी भी हकीम थे। जब तक गृहस्थाश्रम में रहे पौराणिक मत के अनुयायी रहे, शिवजी की पूजा बड़ी भक्ति और श्रद्धा से किया करते थे। बाग से स्वयं फूल लाते और एक २ करके शिवजी पर इस तरह चुनते कि सारा महादेव फूलों का दिखाई देता था। एक दिन जब दैनिक पूजा करने के लिये मन्दिर में गये तो क्या देखते हैं कि एक कुत्ता शिवजी की मूर्ति का जिसे को कल स्वामी जी अलंकृत करके गये थे निरादर कर रहा है

मन को बड़ा दुःख हुआ, और उसी समय से संकल्प विकल्प उठने लगे। उसी दिन से शिव पूजा से ऐसी श्रद्धा उठी कि फिर कभी उस मन्दिर को नहीं देखा। मानों विचारों के परिवर्तनमें स्वामी सर्वदानन्द जी महाराजको वैसी ही घटना पेश आई जैसी महर्षि दयानन्दको शिवरात्रीकी रात पेश आई थी वहां चूहा कारण बना था और यहां कुत्ता।

शिव मूर्तिका पूजन छूटा तो वेदान्त की ओर रुचि गई। हिकमत के कारण कुछ तो पहिले ही अच्छी फ़ारसी जानते थे अब फ़ारसीकी अन्य पुस्तकें बोस्तां, मौलाना रूमी और बूअली क़लन्दरकी मसनवियात आदि पढ़ने लगे, जिस से वेदान्तके ग्रन्थोंमें उनकी अच्छी रुचि और प्रवृत्ति हो गई। फिर वेदान्त के अनुष्ठान करने का विचार उत्पन्न हुआ और इस विचार के उत्पन्न होते ही गृहस्थ को त्याग कर एक वेदान्ती संन्यासी से संन्यास ग्रहण कर लिया। उस समय स्वामी जी की आयु ३२ वर्ष के लगभग थी।

संन्यास लेने के पश्चात्

संन्यास लेने के पश्चात् स्वामी जी तीर्थ यात्रा को चले गये और चार वर्ष में समस्त तीर्थ कर डाले। अब वह वेदान्त में कुछ ऐसे मग्न हुए कि कई बार अपने आप को भी भूल जाया करते थे। एक बार अपने विचार में वह ऐसे लीन हुए कि तीन दिन तक समाधि लगी रही और कुछ खाया पिया नहीं। भूक को सहन करने की शक्ति तीर्थ यात्रा के समय बहुत बढ़ गई थी। जब द्वारका से तीर्थ कर के

आये तो बड़े विकट जंगल में से गुज़रना पड़ा। जहां पर खाने पीने के लिये कुछ न मिलता था कदाचित तीन चार दिन के पश्चात् सिद्धेश्वर के पास जाकर जौं का आटा खाने को मिला, जिसे स्वामी जी ने भूख निवृत्त करने के लिये खा लिया। तीर्थ यात्रा के सफ़र में एक आदमी ने कहा कि स्वामी जी अगर लड्डू पेड़े खाने हैं तो उदयपुर के राज्य में जाओ, जहां साधु सन्तों का बहुत सत्कार होता है। मन में मौज आ गई और उसी ओर का रास्ता लिया, जाकर देखा तो वहां भी जौ के आटे के लड्डू मिले। कुछ दिनों तक वहां रहे फिर वहां से चल दिये और मथुरा के बाहर एक सेठ के मकान पर आ कर ठहरे। स्वामी जी के साथ एक दो अवधूत महात्मा भी थे वह भी इन की तरह मस्त मौला रहा करते थे। एक अवधूत ने शहर में जाकर एक वैश्य को पकड़ लिया और कहा कि शहर के बाहर सन्त आये हैं उन का सत्कार करो वैश्य ने बड़े प्रेम से सन्तों को भोजन कराया अगले दिन भी यह तीनों साधु मिल कर उस वैश्य के घर जा डटे और कहा भूख लग रही है, सन्तों को भोजन कराओ आखिर उस को मानना पड़ा और इन को अपनी बैठक में बिठला दिया: अब लगे सन्त रोटी की इन्तज़ार करने, तीन घंटे व्यतीत होगये कोई रोटी पूछने न आया इन सन्त महात्माओं ने समझा कि आज तो वैश्य ने मख़ौल किया है, परन्तु थोड़ी देर के बाद एक आदमी ने आकर हाथ धुलाए और चला गया। फिर इन्तज़ार होने लगी और आपस में हंसी ठट्ठा

करने लगे कि आज अच्छा सेठ मिला है इतने में वड़े सुन्दर थाल तौलियों से ढके हुए आये और सन्तों के सामने रख कर नौकर भाग गया। संत सोचने लगे कि यह क्या वात है भूख तो लगी ही थी तौलिया उठा कर देखा तो ज्ञात हुआ कि उन में वहुत देर के सड़े भुने चने हैं जिन में सुसरी पड़ रही है इस पर खूब हंसी उड़ी इतने में वह वैश्य भी ऊपर आया और कहा महाराज! मेरे नौकर से अपराध हुआ मुझे क्षमा करें॥

सत्यार्थ प्रकाश का चमत्कार

वेदान्त की मस्ती में ऐसी २ घटनाओं से पार होते हुए स्वामी जी चित्र कोट में आये, और यहां पर कुछ मास ठहरे रहे, वहां सरदियों के दिनों में यमुना के किनारे नंगे पड़े रहा करते थे। इन्हीं दिनों में उन को एक बीमारी लग गई जो अव तक कभी २ उन को सताया करती हैं अर्थात् छाती और कटि का दर्दः यहां स्वामीजी वड़े तप का जीवन व्यतीत करते थे वह २४, २४ घंटे तक अपने विचारों में लीन रहा करते थेः भोजन का विचार आया और मिल गया तो खा लिया नहीं तो मस्ती में बैठे हैं। कुछ बीमार हो गये इस की सूचना गांव के एक ठाकुर को मिली जो स्वामी जी का सेवक था किन्तु धार्मिक विचारों में वह अपने इलाके में एक ही आर्यसमाजी था और स्वामीजी नवीन वेदान्ती थे। उसने आकर औषधि आदि द्वारा स्वामीजी की खूब सेवा टहल की, जब निरोग होगये तो मन में इच्छा हुई कि यहां से

चलें । अपने सेवक को मिलने के लिये बुलाया, वह आते समय अपने साथ एक पुस्तक ले आया और पहले तो कुछ देर और ठहरने के लिये प्रबल इच्छा प्रगट की, किन्तु जब देखा कि नहीं मानते तो निवेदन किया कि महाराज ! यदि मेरी सेवा से आप प्रसन्न हैं तो इस पुस्तक को ग्रहण कीजिये और यथा सम्भव इस का आदि से अन्त तक अध्ययन करने की कृपा करें ।

स्वामी जी ने पुस्तक को ले लिया जो कि एक बड़े सुन्दर रेशमी रूमाल में लपेटी थी और प्रतिज्ञा की कि वह इस को अवश्य पढ़ेंगे, यह कह कर वहां से गोरखपुर की ओर प्रस्थान किया । मार्ग में विचार आया कि देखें तो सही यह कौन सी पुस्तक है जो हमारे भक्त ने इतने सुन्दर वस्त्र में लपेट कर दी है । खोल कर देखा तो वह आर्य्यभाषा में सत्यार्थ प्रकाश की एक सुन्दर प्रति थी स्वामी जी ने इस पुस्तक का नाम सुना हुआ था और वह इस से अत्यन्त घृणा करते थे तथा नवीन वेदान्ती होने के कारण वह इस पुस्तक को देखना तक पसन्द न करते थे । किन्तु अपने सेवक को वचन दे चुके थे, इस लिये और दूसरे यह भी मन में आया कि चलो देख तो लें इस में क्या लिखा है । सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ना आरम्भ किया और प्रतिदिन निरंतर पढ़ते रहे, जब तक इस को समाप्त न कर लिया । सत्यार्थ प्रकाश का समाप्त करना था कि स्वामी जी कुछ और के और बन गये । अब नवीन वेदान्त का भ्रम दूर हो गया । सत्यार्थ प्रकाश के पाठ ने उन के जीवन में ऐसा चमत्कार

दिखलाया कि जहां वह पहले पक्के वेदान्ती थे वहां अब पक्के आर्य्य समाजी बनगये।

आर्यसमाजके कार्य क्षेत्र में

अब मन में वैदिक धर्म्म के प्रचार की लग्न लग गई और झूठे मत मतान्तरों का खण्डन आरम्भ कर दिया। किन्तु पूरे तौर पर वैदिक धर्म्म प्रचार के लिये अधिक संस्कृत विद्या की आवश्यकता प्रतीत होने लगी इस लिये संस्कृत और वैदिक सहित्य का अध्ययन आरम्भ कर दिया। जहां भी कोई योग्य पण्डित मिला, वहां ही उस से पढ़ लिया। पांच साल में सिद्धान्त कौमुदी न्याय, सांख्य, कारिका, वेदान्त पर शंकर भाष्य, खण्डन खाद्य, आदि पुस्तकें पढ ली, इस के अनन्तर स्वामी जी के समस्त ग्रन्थों और उपनिषदों का पाठ कर लिया। इस प्रकार इस वृद्धा· वस्था में बड़ी मेहनत और परिश्रम से संस्कृत और वैदिक साहित्य में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और इस समय तक जब भी समय मिलता है अपनी योग्यता को बढ़ाने का यत्न करते हैं।

वैदिक धर्म प्रचार के लिये अपने में अच्छी योग्यता धारण कर के स्वामी जी अब १२ वर्षों से निरन्तर देशभर में वैदिक शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं। दिन और रात उन्हें वैदिक धर्म प्रचार की लग्न लगी रहती है। बीमारी और तकलीफ़ के दिनों में भी उन की आत्मा आर्य समाजों में ही घूमती रहती है। आर्य समाज में बहुत कम व्याख्यान दाता ऐसे होंगे जो दो अढाई घण्टे तक निरन्तर बोल सकते

हां। कई २ स्थानों पर स्वामी जी को एक दिन में तीन २ बार बोलना पड़ता है किन्तु उन्होंने कभी नां नहीं की। विकट से विकट और छोटी से छोटी जगह में स्वामी जी जाने को तैयार रहते हैं यदि उन्हें जताया जावे कि वहां प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

अछूतों के लिये स्वामी जी के मन में अत्यंत प्रेम है। उन को उठाने और उन्नत करने के लिये वह अपने हर व्याख्यान में कुछ न कुछ मिण्ट देते हैं।

इन के व्याख्यान दिन प्रति दिन सर्व प्रियता प्राप्त कर रहे हैं। आर्य समाजमें काम करने वालों की न्यूनता को अनुभव करके स्वामी जी ने पुल काली नदी डाकखाना हरदुआगंज ज़िला अलीगढ़ में एक साधुआश्रम खोल रखा है जिस में वह साधुओं की शिक्षा व रक्षा का काम कर रहे हैं इस समय तक वह कई संन्यासी अपने आश्रम से तैयार कर के आर्यसमाज को दे चुके हैं जो समाज का काम बड़ी सफलता से कर रहे हैं।

यह है स्वामी जी का संक्षिप्त शिक्षा दायक जीवन चरित्र, आशा है कि आर्य्य भाई इससे बहुत सी शिक्षा ग्रहण करेंगे यदि और कुछ नहीं तो कमसेकम उस जोश से ही कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे जिस धार्मिक जोश के कारण स्वामी जी इस वृद्धावस्था में दिन रात सफ़र की तकलीफें सहन कर के धर्म्म का प्रचार कर रहे हैं। परमात्मा करें कि हम लोगों में यही धार्मिक उत्साह और जोश उत्पन्न हो॥

आनन्द-संग्रह

स्वाध्याय ही जीवन है ॥१॥

स्वाध्याय से मनुष्य के जीवन में विचित्र परिणाम होता है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य साधन यही है। विना स्वाध्याय कोई भी पुरुष अपने हिताहित की विवेचना ठीक २ नहीं कर सक्ता। जिन पुरुषों की ख्याति अद्यावधि संसार में विख्यात है व जिनका नाम अतीव गौरव व प्रतिष्ठा से स्मरण किया जाता है, जिनके जीवनचरित्र का अवलोकन करना साधारण पुरुषों के अन्तःकरण को सच्चरित्र बनाने का हेतु बन जाता है वे सब महानुभाव स्वाध्याय शील थे।

प्रबल स्वाध्याय के प्रताप का ही यह फल है कि जिन्हों ने परमेश्वर रचित पदार्थों की सहायता से ऐसे २ अद्भुत और विचित्र गुणों का अविष्कार कर दिया कि जिनको स्वाध्यायहीन पुरुष अपने विचार में भी नहीं ला सकते। इसी विषय में उपनिषदों का वचन है "स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यम्" अर्थात् स्वाध्याय से कभी भी प्रमाद (लापरवाही) न करना चाहिये। इससे मनुष्य के मन में सुधार के अङ्कुर और बुद्धि में सूक्ष्मता उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य उचितानुचित कार्य

को जानकर अनुचित के परित्याग और उचित के ग्रहण में समर्थ (कामयाव) हो जाता है। परम्परा से एवं भूतसन्मार्ग का प्रदर्शक स्वाध्याय ही है। जिस प्रकार अभिनवजात अङ्कुर को जल की आवश्यकता होती है, यावत् उनकी मूल शाखा जलाशय तक न पहुंच जाए। जल सेवन अङ्कुर को वृक्ष और वृक्ष को सुपुष्पित सुपल्लवित बनाने का हेतु बन जाता है। विना जल की सहायता के अङ्कुर मुरझा कर नष्ट होता है। ठीक यही सम्बन्ध मनुष्य जीवन के साथ स्वाध्याय का है। इससे मनुष्य के विचार शुद्ध और पवित्र होकर उसमें परोपकार करने की योग्यता का सम्पादन कर देते हैं जिससे मनुष्य अपने लिये हितकर होकर जनता के वास्ते हितकारी बन जाता है, जिससे संसार में सुख की मर्यादा उत्तरोत्तर स्थिर हो जाती है। प्रमाद से जो व्यक्ति अथवा जाति स्वाध्याय से विमुख होती जाती है, शनैः २ उसका अधःपतन होने लगता है। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बल का ह्रास, जगत् में उपहास, इच्छा का विघात, मनोमालिन्य, उदासीनता, आदि अनेक उपद्रवों के सञ्चार से जीवनमात्र ही भार हो जाता है। अतः स्वाध्याय का सदैव आदर करो और कर्त्तव्य के पालन में तत्पर रहो। योगदर्शन में भी स्वाध्याय का फल बताया है।

स्वाध्यादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ॥

इसका आशय यह है कि स्वाध्यायशील पुरुष का इष्ट देवता के साथ मिलाप या उसके साथ आलाप होता है। यह विचारणीय विषय है। यथा आपके पुस्तकालय में अनेक

प्रकार के पुस्तक रक्खे हैं। आज महात्मा व्यासदेवजी या महानुभाव शङ्कराचार्यजी महाराज संसार में नहीं हैं, परन्तु उनके साथ वार्तालाप करने का, उनके रचित शारीरिक सूत्र व भाष्यादि पुस्तकावलोकन के बिना उपायान्तर नहीं है। पुनः २ उनका स्वाध्याय करने से यह प्रतीत होता है कि हम उनसे ही आलाप कर रहे हैं। कारण यह है कि उन ग्रन्थों में उन महानुभावों के ही मनोभाव विद्यमान हैं। यदाकदा आप को वेदान्त विषय में कोई शङ्का उत्पन्न हुई। वेदान्तदर्शन के देखने से शङ्का निवृत्त होने पर विचारने से यह पता लगता है कि साक्षात् महात्मा व्यासदेवजी आये और शङ्कासमाधान करके अल्मारी के एक कोने में जो उनका नियत स्थान है जा विराजे, यही उनके साथ मिलाप है। यदि आर्यसमाज अपनी सारी विभूति देकर भी महानुभाव ऋषि दयानन्दजी महाराज से वार्तालाप करना चाहे तो असम्भव है, वह संसार में विद्यमान ही नहीं हैं, परन्तु उनके रचित सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकादि पुस्तकों के स्वाध्याय से उनके साथ मिलाप और आलाप हो जाता है। इस कारण सर्व सज्जन महाशयों को न्यून से न्यून दो घण्टा स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। परन्तु हम को आलस्य ने इतना दबाया है कि वह ऋषि जो पुस्तकाकार अल्मारी में पड़े दीमक से सताये जा रहे हैं, उनका मिलाप तो क्या होगा किन्तु कोप तो अवश्य ही होगा। इस प्रकार का कोप किसी के सुख का कारण नहीं हो सकता। इस कोप की निवृत्ति स्वाध्याय से हो सकती है। आर्यसमाज के उत्सव समय जहां उपदेश व भजनादि होते

हैं वहां एक समय इस विचार के लिये (कि आर्यसमाज व वैदिकधर्म की उन्नति किस प्रकार से हो सकती है ?) स्थिर किया जाता है। जहां कई और उन्नति के कारण बताये जाते हैं वहां स्वाध्याय का न होना उन्नति का बाधक और इसका होना उसका साधक प्रगट किया जाता है। इसमें विचित्रता यह है कि जो महाशय इस विषय की पुष्टि करते हैं वह स्वयं स्वाध्यायविहीन रहते हैं। यह कितनी त्रुटि की बात है॥

स्वाध्याय के बिना सद्विचार स्थिर नहीं रहते। सद्विचारों के अभाव से सदाचार की हीनता प्रबल हो जाती है। सदाचार का दूर हो जाना किसी के भी सौभाग्य का कारण नहीं हो सकता, अतः स्वाध्याय को स्थिर करके अपने हिताहित की चिन्ता करो। ऋषि ने वेदों का जो ईश्वरीय ज्ञान हैं स्वाध्याय किया, जीवनमुक्ति को प्राप्त कर परमात्मा की प्राप्ति का उपाय प्रकाश कर के शरीर त्यागान्तर प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होगये। सब का इष्टदेवता जो परमात्मा है उस के साथ सम्प्रयोग करने का उपाय स्वाध्याय ही है।

उदारशील बनो॥ २॥

जब तक मनुष्य का स्वभाव उदार नहीं होता तब तक उस के अन्तःकरण से स्वार्थ का उच्छेद होना अति कठिन है, बिना इस के दूर हुए कोई भी पुरुष लोकोपकार का काम नहीं कर सकता।

जैसे चक्षु को शुक्ल-पीतादिरूपों के देखने के लिये प्रकाश की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार परोपकार करने के लिये स्वार्थ त्याग की ज़रूरत है। जो लोग खुदगर्ज़ी को छोड़े विना परोपकार करने में तत्पर होते हैं वे वास्तव में धर्म की मर्यादा को नहीं जानते। धर्ममर्य्यादा के स्थिर करने में वे ही पुरुष सामर्थ्यवान् हुए जिन्हों ने स्वार्थ को छोड़ कर अपने आप को उदारचित्त बनाया किसी कवि ने उदार और अनुदार पुरुषों का स्वभाव एक श्लोक में वर्णन किया हैः—

अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा है और यह अन्य है ऐसा लघु विचार स्वार्थी पुरुषों का होता है, जो परोपकार करने की सामग्री से विपरीत है। जिन के विचार अव्याहत आकाश की तरह वे रोकटोक होते हैं सम्पूर्ण वसुधा उन का कुटुम्ब अर्थात् अपना आप ही होता है। जिस प्रकार पुरुष अपने लिये या अपने अङ्गों के लिये अग्निचिन्तन नहीं कर सकता प्रत्युत पुष्टि में ही लगा रहता है, तद्वत उदारवृत्ति विशिष्ट प्राणिमात्र की हितचिन्ता में सदैव प्रयत्न करते रहते हैं, ऐसा व्यवपार स्वार्थी पुरुषों की सामर्थ्य से बाहर है।

अतः पुरुषों को परोपकार करने के लिये स्वार्थत्यागी और उदार बनने का यत्न करना चाहिये। स्वार्थ अर्थात् खुदगर्ज़ी मनुष्य के उदार भावों को नष्ट कर दुष्ट भावों को

जो प्राणिमात्र के दुःख का वीज हैं उत्पन्न कर देती है। दुष्ट भावों का महत्व महात्मा मनु जी महाराज इस प्रकार लिखते हैं—ध्यान से सुनियेः—

वेदास्त्यागश्च, यज्ञश्च नियमाश्च तपांसिच।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्

अर्थ—चारों वेद जिन में कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान काण्ड का निश्चय किया हुआ है जो मनुष्यमात्र के लिये सन्मार्ग प्रदर्शक है।

त्याग—पुरुष के जीवन में एक ऐसी शक्ति है जिस से परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः।

यज्ञ अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ का वेदादि सत्यशास्त्रों में विधान किया हुआ है। यज्ञकर्म को ठीक जान कर मनुष्य अभ्युदय को प्राप्त होता है इस से अधिक कोई भी पुनीत कर्म नहीं है।

नियम—योगशास्त्र में नियम पांच प्रकार के कहे गये हैं:

शौच—बाह्याभ्यन्तर भेद में दो प्रकार का है। बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धी, सत्यभाषणादि के द्वारा मन की शुद्धि करना॥

सन्तोष—स्तुति, निन्दा, हानि, लाभ, मान और अपमान में सत्य का परित्याग न करना सन्तोष कहाता है।

तप–विपत्ति के समय धैर्य का न छोड़ना और सम्पत्ति में निरभिमान रहना तप माना गया है ।

स्वाध्याय–वेदादि सत्य शास्त्रों का सदैव विचार करते रहना स्वाध्याय कहा गया है।

ईश्वर प्रणिधान-अशुभ कर्मों के करने में सदैव ईश्वर का भय और शुभ कर्मकलाप को ईश्वरार्पण करना।

तप–मलविक्षेपके दूर करने के लिये भी सदैव प्रयत्न करना तप कहाता है।

यह पञ्चामृत अर्थात् वेदों का पढ़ना, त्याग, यज्ञ, नियम और तप सर्वोपरि जन्म मरण के जाल को काट कर मोक्ष के साधन हैं। परन्तु जिस का भाव दुष्ट है उसके लिये फलदायक नहीं हो सकते ।

जब मनुष्य के शुद्ध भाव होते हैं तब विद्यादि सत्य शास्त्रोंका फल यथार्थ रूप में होता है, मनोमालिन्य होने से (जैसे मलिन दर्पण में मुख देखने से मैं मलिन हूं, आत्मा के लिये चिन्ता और शोक रूप हो जाता है) वेदादि सत्य शास्त्र आत्मा के लिये हितकर नहीं होते।

अतः मनुष्यके शुद्ध भाव होने से वेदादि शास्त्र सन्मार्ग प्रदर्शक होते हैं अन्यथा नहीं। इसलिये प्रत्येक पुरुष को उचित है कि वह उत्तमाधिकारी बने और अपने मनके पवित्र करनेमें सदैव प्रयत्न करे। इस उदाहरणसे आप अच्छी प्रकार समझ सकते हैं कि एक पात्र जिसमें अम्ल (खटाई) लगी हुई है यदि उसको स्वच्छ किये विना उस में दूध डाल दें तो वह दूध अपनी असली दशामें नहीं

रहता, पात्रके दोष से दूषित हो कर दुग्ध फट जायगा, इसी प्रकार विद्या दुष्ट भावों से मिलकर अविद्या में परिणत होजाती हैं जो पुरुष को सन्मार्ग से हटा कर असन्मार्ग (कुटिलमार्ग) की ओर लेजाती है, जो संसार में शान्ति के भङ्ग करने का निमित्त बन जाता है। जिस के अन्तः करण में शुद्ध भावों का आविर्भाव होता है तब उस का यह स्वभाव बन जाता है कि स्वयं अनेक प्रकार के कष्ट उठा कर लोकोपकार का काम वह नहीं छोड़ता॥

उदार वृत्ति के विना शुद्धभाव नहीं होता और विना शुद्धभाव के लोक का हित होना अति कठिन है। उदारता शुद्धभाव को उत्पन्न करके पुरुष को विपत्तिके समय अति कठोर और सम्पत्ति के समय विनीत और दुःखित को देख कर करुणामय बना देती है। बस ऐसे पुरुषों की अधिकता संसार को सुखमय बनाने का हेतु बन जाती है। किसी कवि ने इस पर बहुत ही अच्छा विचार किया है। जैसेः—

आक्रोपितोपि सुजनो न वदत्यवाच्यम्—निष्पीडितोपि मधुरं क्षरतीक्षुदण्डः। नीचो जनो गुणशतैरपि सेव्यमानो हास्येषु यद्वदति तत्कलहेषु वाच्यम्॥

जिस तरह इक्षु दण्ड (गन्ना) पेला जाने पर भी मधुर रस को ही छोड़ता है ठीक इसी प्रकार उदार वृत्ति सज्जन पुरुष अनेक कष्ट पड़ने पर भी लोकहित की चिन्ता ही करते रहते हैं, न्यायपथ से कभी भी पृथक नहीं होते। तथा उदारता हीन पुरुष इस कार्य के करने में भी असमर्थ दिखाई देते हैं उनका बल बुद्धि और पुरुषार्थ सब स्वार्थ के लिये ही होता

हैं, स्वार्थ के रुकने से कलह के उत्पन्न करने में कटिबद्ध होजाते हैं, अतएव कविने ऐसे पुरुषों को नीच शब्दसे याद किया है।

महानुभाव ऋषि दयानन्द महाराजने बुद्धि, शुद्धि द्वारा विद्या का ग्रहण किया, शुद्ध भावोंके साथ मिल कर विद्या ने अन्तःकरण में जगतहित को अर्थात् उदारवृत्ति को उत्पन्न करदिया। उदारताने फिर स्वार्थ को आने का अवकाश ही नहीं दिया। उदारवृत्ति ने अविद्या के दूर करने में जो मनुष्य को स्वार्थी बनाने का एक मुख्य कारण है कितने ज़ोर से संग्राम किया। इस वृत्ति में एक और विचित्र शक्ति है जो इस समय ऋषि के चरित्र से हम को प्रत्यक्ष मिलती है, उदार पुरुष के साथ चाहे कोई कितना ही अनुचित कार्य क्यों न करे, वह वृत्ति उसको उचित कार्य करने के लिये ही बाधित करती है सुनिये—

ऋषि को एक पुरुषने, जो हेत्वाभास की तरह ऊपर से मित्र और भीतर से शत्रु था, विष दे दिया। अचेत अवस्था में किसी ने स्वामी जी से कहा कि वह मनुष्य पकड़ा गया कई बार ऐसा कहने पर स्वामी जी ने शनैः २ उत्तर दिया कि उसको छोड़दो। मुक्ति का उपदेश करने वाला, सन्मार्ग दिखलाने वाला किसी को न बन्धन में फंसाता और न उलटे मार्ग पर चलाता है। इस के पश्चात् जब स्वामी जी को नशे के दूर हो जाने से होश आया तो मनुष्य समुदाय की उप- स्थिति में उस पुरुष को जिस ने स्वामी जी को विष दिया था लाये, तो स्वामी जी ने फिर कहा कि अच्छा जो हुआ

सो हुआ, अब इस को छोड़ दो। लोगों ने कहा कि स्वामी जी महाराज ऐसे मनुष्य को छोड़ना उचित नहीं, क्योंकि यह बड़ा दुष्ट है। ऋषि ने इस का यह उत्तर दिया कि आप लोग विचार तो करें कि जब एक आदमी अपनी बुराई को नहीं छोड़ता तो एक सज्जन पुरुष अपनी भलाई को छोड़ दे, सो कब उचित है?

इस परीक्षा से आपको पता लगा होगा कि उदारवृत्ति पुरुष को कैसा उत्तम और सहिष्णु बनाती है और मनुष्य जीवन को उच्च आदर्श की तरफ़ लेजाती है, अतः मनुष्य को उचित है कि वह उदार बनने का यत्न करे अथवा लोक-हित-चिन्ता को सर्वथा त्याग दे। यही सर्व सत्यशास्त्रों की मर्यादा है॥

---

३ अभ्यासी बनो।

अभ्यास के बिना कोई भी पुरुष संसार में प्रतिष्ठा व मान का भागी नहीं हो सकता। यावत् संसार में कोई भी मनुष्य या मनुष्य समुदाय अपने आप को उन्नतावस्था में नहीं प्राप्त कर सकता तावत् वह अभ्यास करने को अपना मुख्य कर्त्तव्य न मान ले। अद्य संसार में जितने अद्भुत दृश्य व विचित्र घटनाएं दृष्टिगोचर होरही हैं, वे सर्व अभ्यास शीलजनों की क्रीड़ामात्र ही हैं। अभ्यास में यह एक विचित्र शक्ति है कि कोई भी वस्तु व मार्ग कितना ही केदार अथवा विकट क्यों न हो इस के बल से सरल और

सुगम हो जाता है और उस के अभाव में साधारण से साधारण कार्य, सुगम से सुगम पथ भी भयङ्कर रूप धारण कर असाध्यसम होकर प्रतीत होता है। अन्वयव्यतिरेक व कार्यकारणभाव से यह सिद्ध होता है कि अभ्यास ही मनुष्यों की सुखसंपत्ति और निःश्रेयस का एक मात्र कारण है और अभ्यास का न होना ही भ्रमजाल में फंसकर दीन बलहीन, मतिमलीन होकर जन्ममरणादि अनेकविध दुःखों का कारण होजाता है। अब मैं दो दृष्टान्त आप के समक्ष में उद्धृत करता हूं। पाठक महोदय उनको पढ़कर अभ्यास के महत्व को अनुभव कर स्वयमेव अभ्यासी होने का यत्न करेंगे।

(१) वेदों में अधिक समास नहीं हैं, जो हैं वे दो २ व तीन २ पदों से मिलकर बने हैं, क्रिया व उपसर्ग सब ही प्रत्यक्ष और भाषा सरल है, परन्तु अभ्यासाभाव से यथार्थ रूप में उनका अर्थबोध होना कितना कठिन प्रतीत होरहा है। महीधरादि विद्वानों को (यह जानते हुए भी कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है) किंचित बोध न हुआ कि निर्भ्रान्त परमात्मा की ज्ञान में इस प्रकार की अश्लील वाक्यरचना व गाथा हो सकती है वा नहीं? यहां अभ्यास का व्यतिरेक है। वर्तमानकालीन काव्यों में समास बहुत और दीर्घ हैं, अप्रतीत क्रिया, कठिन भाषा है, परन्तु अभ्यासाधार से सुगम हो रहे हैं, यहां अभ्यास का अन्वय है। वेदों के पठन पाठन से परमात्मा का ज्ञान, आत्मा का कल्याण, कर्त्तव्य की पहिचान और दुःखों की हानि है, परन्तु अभ्यास के न होने से उस में उत्तीर्ण नहीं हो सकते, काव्यों में सारशून्य सरलताहीन भाषा का बोध

होता है अभ्यास के होने से ही पढ़ने पढ़ाने वालों को रुचि-कर हो रहे हैं। जिस देश के महानुभाव ऋषि मुनियों ने अभ्यासी होकर वैदिक विज्ञान के द्वारा धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के मार्गों को निर्दोष कर दिया था, आज उन्हीं की सन्तान आलस्य और प्रमाद में फंस कर मिथ्याभिमान वैर विरोध दुष्ट रसमोरिवाज के पङ्क में धंस कर जिस दुःख को अनुभव करने वालों का दृष्टान्त बन रही है, वह कथन से बाहर है।

(२) इसके विपरीत साधारण दशा को प्राप्त अन्य देश निवासियों ने लगातार अभ्यास का आश्रय लेकर विचित्र और अद्भुत वस्तुओं का आविष्कार करके सांसारिक सुख को प्राप्त किया और प्रतिष्ठा के भागी हुए। मित्रवर! यह अभ्यास ही की तो महिमा है कि वह जिस वस्तु की अनायास रचना कर देते हैं वह अभ्यासहीन पुरुषों के बुद्धिपथ में आती ही नहीं॥

परमात्मा की सृष्टि में सर्व पदार्थ विद्यमान ही हैं, अभ्यास शील पुरुष उन पदार्थों की संयोजना व वियोजना के द्वारा उन को अपने अनुकूल और सुख के साधन बना लेता है, परन्तु अभ्यास रहित उन सुख साधनों की उपस्थिति में भी सुख से वञ्चित होकर दुःख पाता है। महानुभाव ऋषि दयानन्द जी महाराज ने अभ्यासी होकर वेदों के शब्दार्थ सम्बन्ध की छानबीन की और जानलिया कि इस से बढ़ कर मनुष्य जीवन को पवित्र करने वाली और कोई शिक्षा नहीं है इसीलिये "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य कर्त्तव्य है," यह नियम बना दिया। उन को यह निश्चय था

कि यदि आर्य्य सन्तान आलस्य त्याग वेदों के अभ्यास पर तत्पर हो जावे तो विधि निषेध रूप कर्मों को जान वर्णाश्रम व्यवस्था का ठीक २ पालन करने लग जावेगी, तब संसार का उपकार करना कुछ भी कठिन न होगा। जगज्जन उपकृत हो कर इन की प्रशंसा के गीत गायेंगे। सज्जनों! आप प्रकृत आर्य्यपदवाच्य बनो और परस्पर मिल कर विचारो कि हम संसार का उपकार किस तरह कर सकते हैं? व्यर्थ दंगादंगी में तो आप अपना उपकार भी नहीं कर सकते, संसार का उपकार करना तो पृथक रहा॥

अतएव आर्य्य सज्जनो! अभ्यासी बनो, अभ्यास करना सीखो, आने वाली सन्तान को अभ्यास शील बनाओ। सत्य है "अभ्यसनशीलाः सुखिनो भवन्तीति". सद्गुण सम्पत्ति के लिये लगातार प्रयत्न करने का नाम अभ्यास है।

(१) अभ्यासी पुरुष व्यसनी नहीं होता, क्योंकि बाह्य विषयों से आने वाले संस्कार उसके अन्तःकरण में स्थिर नहीं होते।

(२) अभ्यास करना यद्यपि कठिन तो प्रतीत होता है, किन्तु यदि पुरुष कुछ काल तक इसका आदरपूर्वक सेवन करे तो फिर अभ्यास ही उसको नहीं छोड़ता। हिताहित मार्ग का आचार्य्य बन कर उत्तरोत्तर जीवन को पवित्र बनाता है।

(३) अभ्यासी पुरुष ही अरोग्य और उपकार करने में सामर्थ्यवान् होता है।

(४) अभ्यासी पुरुष दीन व बलहीन कभी नहीं होता।

(५) अभ्यासी पुरुष अभ्यास के बल से मृत्यु से नहीं डरता। कारण यह कि उसका जीवन बाकायदा है। सत्य है जिस का जीवन बाकायदा है उस की, मृत्यु बाकायदा है। जीवन के बे कायदा हो जाने से मृत्यु भी बेकायदा होजाती है, अतः अभ्यासी बनो।

विचार शील बनो ६

विना विचारे जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम ठीक नहीं होता। कर्त्ता के अनुकूल फल का न होना जगत में उसके उपहास और अन्तःकरण में पश्चाताप का कारण बन जाता है, जिस से विकलता की वृद्धि और परिश्रम की हानि उत्तरोत्तर विचारों की दुर्बलता के निमित हो जाती है। संसार में संपूर्ण कार्य विचाराधीन हैं। जिस दोष से विचार दूषित हो जाते हैं, ठीक उसी दोष से सब व्यवहारों का दूषित होजाना अवश्यमेवभावी ही है, अतएव संसार क्षेत्र में सदैव सब को विचार पूर्वक कार्य करना ही उचित है। विचारने और शास्त्रावलोकन से यह वार्ता विस्पष्ट विदित होजाती है कि यावदन्तःकरण सद्विचारों के प्रभाव से प्रभावित नहीं होजाता तावत् लोकोपकार करने का अङ्कुर उस में उदय ही नहीं होता। परहित चिन्ता का मूल कारण सद्विचारों की जाग्रति ही है। इसके विना तो अपना उपकार भी

आप नहीं कर सकता औरों का उपकार करना तो अति दूर है। सुविचार प्रथम पुरुष के मन में सद्गुणों का प्रसार करके उसको उपकार के योग्य बनाते हैं। तत्पश्चात् उस पर लोकोपकार करने का शासन जमाते हैं। सभ्यजनो! यदि हम किञ्चित विचार से काम लें तो कितना सीधा और सरल मार्ग प्रतीत होता है कि जो स्वयं बली व गुणी हैं वे औरों को बलवान् व गुणवान् बना सकते हैं अन्यथा नहीं। कारण यह है कि जो वस्तु जिस के पास उपस्थित ही नहीं है वह अन्य पुरुषों को नहीं दे सकता। संसार में जिन महानुभावों ने परोपकार के लिये पदारोपण किया, उन्होंने प्रथम दीर्घ काल तक निरन्तर और सत्कार पूर्वक उस के साधनों के एकत्रित करने में प्रयत्न किया साधन संपन्न होते ही अन्तरंग में उदारवृत्ति का तरंग उठने लगा। उस के उत्थान होते ही 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का राग आलापने लगे। येही मनुष्य जीवन की अन्तिम सीमा है। इस वृत्ति में एक अद्भुत शक्ति है कि सत्य के विरोधी पदार्थों को चाहे वे कितने ही प्रिय और सुख के साधन क्यों न हों, परित्याग कर देती है और सदैव सर्वथैव सत्य की रक्षा करती है। स्वभाव इसका विचित्र है। यह वृत्ति दुःखी, दीन, बलहीनों को देख कर अतीव कोमल हो जाती है। उन असहायों की सहायता करना, विद्याहीनों को विद्यादान, बलहीनों को बलप्रदान करना ही अपना मुख्य उद्देश्य बना लेती है। तन मन धन अर्थात् सर्वस्व को परोपकर के अर्पण कर देती है और विपत्ति के आने पर अति कठोर वज्रसम

होकर प्रतीत होती है। प्रत्येक विपत्ति इस के सामने सम्पत्ति के रूप में बदल जाती है। इसकी आकृति अति मनोहर है। इस देवी के जिस को दर्शन हो जाते हैं, वह फिर, जैसे परिवर्तन शीशे में जो वस्तु पतन हो जाती हैं वह फिर नहीं निकल सकती, वैसे इसका ही होजाता है। विचारशील पुरुष जब क्रमशः हिताहितविवेकभेदयुक्त होकर अहित की निवृत्ति और हित में प्रवृत्ति करते हैं, तत्पश्चात् इस उदार वृत्ति की आवृत्ति अन्तःकरण में स्वयमेव होने लगती है। अतएव विचारशील बनना और विचार पूर्वक कार्य करना ही सर्व पुरुषों को हितकारी होसकता है। यावदन्तःकरण सच्चरित्र नहीं होता तावत् इस उदार वृत्ति का चित्र उस में उतर ही नहीं सकता। अन्तःकरण की सन्मार्ग प्रवृत्ति का कारण सत्संग और उन महानुभावों के चरित्रों का स्मरण करना ही है। कदाचित क्वचित सांसारिक दुर्घटनाओं का अवलोकन कर अदृष्टजन्य भी इस की आवृत्ति होती है। वैदिक धर्म के समय में तो इस प्रकार के पुरुष सहस्रशः थे। उपनिषद् व दर्शन् ग्रन्थ इस विषय में साक्षी दे रहे हैं, परन्तु महाभारत युद्ध के लग भग तीन सहस्र वर्ष के बाद महात्मा बुद्ध का अविर्भाव हुआ पुरुषों की जीर्ण दशा व मरणावस्था को निहार कर उसके अन्तकणरण में एक आघात हुआ उसके होते ही उदार वृत्ति का विकास होगया। दुखियों के दुख को दूर करना ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मान लिया। कुछ काल तक संसार के सुख को अनुभव करते हुये जब एक राजकुमार उत्पन्न हुआ तब उस के कुछ काल

वाद फिर उस वृत्ति का उत्थान हुआ उदासीन होकर संसार सुख परित्याग के लिये कटिबद्ध हो गये। चलते समय पुत्र दर्शन का स्नेह हृदय में उत्पन्न हुआ। जहां अपनी माता के पहलू में वालक शयन कर रहा था, उसी स्थान में आ उपस्थित हुए। अद्भुत दृश्य का सामना हुआ। चक्षु से अश्रपात, शरीर में कम्प हो रहा है। एक ओर पुत्र का स्नेह दूसरी ओर लोकोपकार का ध्यान! क्याही विचित्र घटना है? उदार वृत्ति परहित चिन्ता का मार्ग दिखाती है, पुत्र की प्रीति मोह में डाल कर जगत में फंसाती है। इस विप्रतिपत्ति के वाद भविष्य में होने वाले वुद्ध ने पुत्र स्नेह का परित्याग कर दिया। उदार वृत्ति ने योगीराज कृष्णचन्द्र की निम्नोक्ति का ध्यान दिलाया—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽमहृतचेतसाम्। व्यवसायात्मिका वुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

मन विषय वासना में फंसने से लोकोपकार नहीं हो सकता यह कह कर जंगल का मार्ग लिया। साधनसम्पन्न हो कर महात्मा ने दीनदुःखियों के क्लेश मोचन और शान्ति प्रदानार्थ जो प्रयत्न किया उसे पाठकगण स्वयं जानते ही हैं अधिक कथन की आवश्यकता नहीं है। वुद्धदेव के देहान्त के वाद कुछ काल तक तो उस के उद्देश्यों की उन्नति होती रही, उसके पश्चात् जिन त्रुटियों के दूर करने का यत्न किया था, उन्हीं दोषों ने आ घेरा। महात्मा का कथन था कि कर्म्म तन्त्र संसार है। कर्म के सुधार से मनुष्य जीवन का सुधार हो सकता है। इस कारण उपदेशार्थ ऐसे २ पुस्तक निर्माण

किये थे। "यथामनः पूर्वाङ्गमा धर्मा मनः श्रेष्ठो मनोयमः। मनसा चेत् प्रदुष्टेन भापेत व करोति वा॥ ततोदुःखमन्वेत्येन चक्रवद्वहतः पदम्॥ मनः पूर्वाङ्गमा धर्मा मनः श्रेष्ठो मनोमयाः मनसा चेत्प्रसन्नेनेम भापेत वा करोति वा। ततो सुख मन्वेत्येन छायेव ह्यनपायिनी"॥ सो इनका निरादर होने लगा।

इस के पश्चात् महानुभाव शंकर का आविर्भाव हुआ। गुरुकुल से विद्याव्रत स्नातक होकर निकले ही थे कि वैदिक धर्म के विरुद्ध मत का प्रचार देखकर मन में खेद का संचार हुआ। तत्काल ही उसकी निवृति और पुनः वैदिक धर्म की प्रवृति का उपाय सोचने लगे। सन्यासाश्रम ग्रहण करना उचित जान कर माता से आज्ञा लेने गये। मोह में फंस कर माता ने आज्ञा नहीं दी इधर माता की आज्ञा का आदर, उधर लोकहित चिन्ता का ध्यान था कि कर्त्तव्य विमूढ होने से उन के मन में विकुलता का प्रसार होने लगा एक समय तड़ाग में स्नान के निमित्त गये। वहां इस चिन्ता रूपी ग्रह से ग्रस्त होकर कहने लगे कि मुझे ग्रह ने ग्रस लिया है। यह सुन कर रुदन करती हुई माता तड़ाग तट पर आई, जहां चिन्ता रूपी नक्र से व्याकुल होकर शंकर खड़े थे। पुत्र को पुकार कर विलाप करती हुई भूमी में पतित होगई। समय पाकर तेजस्वी बालक बोला कि माता इस प्रतिज्ञा से मुझे नक्र छोड़ता है कि यदि आप मुझ को लोकोपकार करने की आज्ञा दें। माता ने जीवन रक्षा का उपाय सोच कर प्रसन्नता से आज्ञा देना स्वीकार किया। अतिमोद से ओजस्वी शंकर

सन्यास ग्रहण करके लोकोपकार में यत्न करने लगे। उदार वृत्ति का फल यह प्रत्यक्ष ही है। सत्य है—

उदार वृत्तिविशिष्टाः परदुःखप्रहाणाय कृतप्रयत्ना भवन्तीति नेतरो जनः ॥

अब विचारना यह है कि जिस वेदान्त की शिक्षा ने शंकर को परोपकार करने के लिये लगातार प्रयत्न करने को उद्यत किया, आलस्य और प्रमाद को त्याग कर आजीवन वैदिक धर्म के प्रचार के लिये यत्न करते रहे, कितने शोक और ग्लानी का स्थान है कि आज उन के अनुयायी उन को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने वाले उसी शास्त्र को पढ़ कर, उसी आश्रम में होते हुये आलस्य और प्रमाद में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। परहित चिन्ता तो दूर रही, अपकार की ओर उलटा संसार को लगा रहे हैं। विरुद्ध गमन करके उनके अनुयायी बनना लज्जास्पद है। उन्होंने बताया था कि 'वेद नित्यमधीयताम्' 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस ब्रह्म सूत्र पर भाष्य करते हुये लिखते हैं कि साधनचतुष्टय के अनन्तर अर्थात् विवेक, वैराग्य, षटसम्पति और मुमुक्षुत्व इन साधनों के पश्चात ब्रह्म के साक्षात्कार करने का प्रयत्न करना चाहिये। सम्प्रति संम्पूर्ण साधनों को त्याग कर स्वयमेव ब्रह्म बन बैठे। उपकार कैसे हो सकता है जब कि उपकार के साधन उपस्थित ही नहीं हैं।

अढ़ाई सहस्र वर्ष के लगभग बीतने पर जब कि एक भयंकर समय आ उपस्थित हुआ था एक ओर ईसाई मत का प्रचार और दूसरी ओर इस्लाम का विस्तार प्रबल वेग

से हो रहा था। भविष्यत् में होने वाले ऋषि का प्रादुर्भाव ठीक उसी समय हुआ। बाल्यावस्था से ही उस पर उदार-वृत्ति अपना शासन करने लगी। देखिये, किस प्रकार उदार-वृत्ति उसे धर्मप्रवर्त्तक बना रही है। शिवरात्रि के दिन पिता की आज्ञा से मन्दिर में पाषाण पिण्ड महादेव की पूजा करने गये। ठीक इसी समय उदारवृत्ति आगामी सन्मार्गप्रदर्शक बनाने के लिये शिक्षा दे रही है कि "जिस के प्रबन्ध में संपूर्ण संसार है और जो सब का रक्षक और कर्म फल का विधाता है, वह यह नहीं"। उसको अन्वेषण करना उचित है यह शिक्षा पाते ही पिता से प्रश्नोत्तर करने लगे, जिस से पिता का कोप और माता की दया बढ़ने लगी। ये विचार कुछ शिथिल होने ही लगे थे कि एक मृत्यु का दृश्य सामने आते ही उदारवृत्ति की प्रबलता पुनः होगयी। इसी अवस्था में "मृत्यु से कैसे बचें और जगदीश्वर की प्राप्ति किस प्रकार हो" हृदयावकाश में बार २ यह ध्वनि होने लगी। उदासीनता बढ़ने लगी। माता पिता की चेष्टा संसार बन्धनों में जोड़ने की और उस तपस्वी की उनको तोड़ने की हुई। समय पाकर गृह का परित्याग कर दिया और लगातार जंगलों पर्वतों में परिभ्रमण करते हुए साधनों का संचय करते रहे। मृत्यु के भय से निर्भय होकर और ईश्वर का साक्षात् करके जिस अमूल्य धन का संचय किया था, उस का वितरण और विपरीतमार्ग में प्रवृत्त हुए जनों को सन्मार्ग दिखलाने में यत्न करने लगे। अनेक विपत्तियों के आते हुए भी बड़े प्रबल वेग से पाखंड का खंडन करना ही अपने जीवन का उद्देश्य

बना लिया और आज्ञा दी कि सर्वथा वैर विरोध को त्याग कर यहां जो पाखंड हो उसका निवारण करना तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिये । उनकी शिक्षा वेदादि सच्छास्त्रों के भाष्य से विदित ही है। सत्यवादी,सत्यमानी और सत्यकारी, होना, अनुचित अभिमान का त्याग, उचित अभिमान होना और कल्याण का मार्ग बताना । ठीक है—"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः" ।

प्रिय पाठकगण ! जिस धर्मरूपी धन को आपके अधिकार में दिया है। जब तक हम लोग उदार आत्मा न होलें, तब तक उसकी रक्षा व वृद्धि कदापि नहीं कर सकते । इस कारण सर्व-सज्जनों को उदारवृत्ति आत्मा होने का प्रयत्न करना उचित है।

ऋषि जीवन ।

ऋषि जीवन और मनुष्य जीवन में बड़ा भेद है. ऋषि भी मनुष्य होते हैं और मनुष्यों जैसा उनका रूप होता है, किन्तु कुछ नियम ऐसे हैं जो ऋषि जीवन का मनुष्य जीवन से विभिन्न (पृथक) करते हैं, वह नियम जागृत होकर मनुष्य को ऋषि बनाने के कारण बन जाते हैं। जिस तरह मनुष्य जीवन में जब कि बीमारी के नियम स्वास्थ्य के नियमों को दबा कर अपना काम करते हैं तो बीमार कहा जाता है और जब बीमारी के कारणों को दबा कर स्वास्थ्य के कारण प्रगट

होते हैं तो उसी मनुष्य को स्वस्थ कहते हैं जिस तरह इन दोनों का सम्बन्ध बाह्य शरीर के साथ है ठीक उसी प्रकार अन्तरीय शरीर जिसको अन्तः करण कहते हैं उस पर भी काम, क्रोध और अहंकार का दौर सदैव बना रहता है जब यह अपने अनुचित प्रभाव से जीवात्मा को पराजित करते हैं तो आत्मा अपने अस्तित्व को भूल कर भ्रम के चक्कर में पड़ जाता है, भ्रम की अधिकता इस की संकल्प शक्ति को (जो मनुष्य का उत्तम सत्व है जिस के बिना कोई भी काम लौकिक व पारलौकिक हल नहीं हो सकता है) नष्ट कर देती है इस के नष्ट होने से मनुष्य अपने कर्तव्य के पूरा करने में (जिस के लिये ही मनुष्य का अस्तित्व संसार में विद्यमान है) असमर्थ हो जाता है कर्तव्य से गिरना ही अकृतकार्यता का प्रगट होना है। अकृतकार्यता के साथ जिस का सामना होता है वह दुर्भागी, लाचार, ख्वार और बीमार माना जाता है योगीराज कृष्णचन्द्र गीता में लिखते हैं कि कामादि प्रबल होकर जीवात्मा के शत्रु हो जाते हैं। यह मारे आस्तीन होकर चित्तकी शान्ति को नष्ट भ्रष्ट करके सदैव आत्माको बेचैन रखते हैं। ऐसा आचरण अपने लिये दुःखप्रद होकर औरों के दुःख का कारण बन जाता है। यह क्षुद्र, लघु मनुष्य जीवन है, पशु जीवन नहीं, क्योंकि पशु सदैव अपने कर्तव्य के पालन में कटिबद्ध रहते हैं, कभी भी फेल नहीं होते, यदि उनके मार्ग में कोई रुकावट न हो।

मित्रो! अब इस विषय पर (कि वह कौन से नियम हैं जो मनुष्य जीवन को पल्टा देकर ऋषि जीवन बनाने के

कारण होते हैं।) विचार करें, इस से प्रथम मनुष्य जीवन जो तीन प्रकार का है वर्णन करना आवश्यक है। अधम मनुष्य, मनुष्य और ऋषि—मनुष्य वह है कि जिसका संकल्प सदैव यह हो कि मैं अन्याय से किसी के दुःख का कारण न बनूं और न कोई मेरे दुःख का कारण हो, जो न किसी को दबाता और न स्वयं दबता है यह मनुष्य जीवन है। वह मनुष्य जीवन अधम है कि जो अपनी कार्य सिद्धि के लिये औरों के हानि लाभकी उपेक्षा ही नहीं करता। इस प्रकारका विचार बड़ा ही हानिकारक होता है कि जिससे मनुष्य जाति को अत्यन्त दुःख होता है। यह......अन्य मनुष्यों को आवारा करता है। यह मनुष्य जीवन अधम है। ऋषि जीवन वह है कि जिसमें स्वार्थ सिद्धि कुछ नहीं होती, केवल औरोंकी भलाई के लिये जीवन भर प्रयत्न करना इसका स्वभाव होजाता है। अब मनुष्य जीवनके सन्मुख बुराई और भलाई रूपी मार्ग दो स्थित हैं। यदि मनुष्य अपने पगको बुराई की ओर बढ़ायेगा तो अधम जीवनकी ओर आता जायगा, यदि भलाईकी ओर पग उठायगा तो ऋषिकी पदवी पायेगा। जितना २ भलाई की ओर झुकता जायगा उतना ही बुराईको दूर भगाता जायगा। बुराईकी ओर आने से भलाईसे दूर हो जाएगा, जैसे रेलगाड़ी एक स्टेशनको जितना २ छोड़ती जायगी उतना ही दूसरे स्टेशन के समीप आएगी, किन्तु मनुष्यको ऐसा पवित्र जीवन बनानेके लिये हुज्जत और बहाने बाजी छोड़ कर तपस्वी बनना पड़ता है इसीका नाम मृत्यु से पहिले मरना है। उसका जीवन शोक दुःख और विपत्तियों से पृथक रहता है यह निश्च्यात्मक

है कि जब मनुष्य जीवनमें तप आजाता है तो तपके प्रभावसे आत्मा काम आदिको दबा कर प्रबल हो जाता है फिर उनका अनुचित प्रयोग न करने से आत्मिक बल प्रगट हो जाता है। आत्मिक शक्तियें उभर आती हैं उनके प्रगट होने से मनुष्य महान् मस्तिष्क वाला उच्च विचार वाला और साहसका पुतला बन जाता है। मस्तिष्क के सम्पूर्ण होने से अच्छे विचारों का उत्पन्न होना, साहस से उनके पूरा करनेमें निरन्तर प्रयत्न करना इसका स्वभाविक गुण बन जाता है। जीवन और मृत्यु के नियमको ठीक २ समझ कर निर्भय रहना उसके स्वभावमें दाखिल होजाता है। नियम है कि तपका जीवन मनुष्यको ऋषिकी पदवी दिलाता है, मनुष्यको ऋषि बननेके लिये तपस्वी होना आवश्यक है। जो उपाय कामादिको दबा कर आत्माके विजयी होनेके लिये काम में लाये जाते हैं उनको तप कहते हैं। जिस प्रकार सोना अग्नि का ताव खाकर कुन्दन बन जाता है और उसमें निराली चमक दमक जो पहले मैलसे छुपी हुई थी निकल आती है ठीक इसी प्रकार से अन्तःकरणके मल विक्षेप से जो आत्मा अपने आपको निर्बल और सदोष मान बैठा था, तपोबलसे मलको दूर करके सबल और निर्दोष हो जाता है, उस समय आनन्दका स्रोत लहरें मारता है। नये जीवन का संचार उत्साह और पुरुषार्थ को उभारता है ऐसे जीवन में न कुछ करना और न कराना, न हारना और न हराना बुराईको उखाड़ना, भलाई को पसारना, परोपकार करते हुये समय व्यतीत करना जीवनका उद्देश्य शेष रह जाता है। इसी अवस्था का दूसरा नाम मुक्त जीवन भी है। अब इस

विचारको यहां ही छोड़कर दूसरी तरह विचारसे काम लें तो पता लगेगा कि ऋषियोंका उपदेश कैसा सुखदायक था, यद्यपि संस्कृत साहित्य बड़ा ही गंभीर और पूर्ण था किन्तु उस पर लगातार आघात होनेसे कौन २ सी पुस्तकें जिनमें अनेक विद्याओंका पूर्ण रूपसे वर्णन कियागया था लुप्त होगईं, इसका ठीक २ पता लगाना हमारे यत्न से बाहर है। किन्तु दर्शन आदि जो कि वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने में साक्षी रूप में स्थित हैं यदि उन दर्शनोंके दर्शन होते तो वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान कहने में भारतवासियों को पूर्ण संकोच होता, इन ऋषि प्रणीत दर्शनों में जीव, ईश्वर और प्रकृतिके सम्बन्धमें प्रबल युक्तियोंसे विचार किया गया है यद्यपि आज कलकें विद्वान दर्शनों के मर्म समझने में रूपसे समर्थ नहीं किन्तु फिर भी जो मनुष्य अपनी बुद्धिसे उनका विचार करता है उसका मन उन महानुभावोंके समान और आदरका घर होजाता है। दर्शनों के विचारसे उन की उदारता, परोपकारिता और सदाचारके विचारके भावोंका ठीक २ पता लग जाता है उनके पढ़ने और उनके अनुकूल अनुष्ठान करने से मनुष्य अपने कर्तव्य कर्मको जो इसके पूर्णानंद का कारण है समझ जाता है फिरः—

खुल गया जिस पै राज़े पिनहानी।
हेच समझे वह ऐश सुलतानी॥

का चिन्तन करता है।

संस्कृत साहित्यमें दर्शनोंके दर्शन उसके गौरव और प्रतिष्ठाके कारण हैं यद्यपि वेद ईश्वरीय ज्ञान और सर्ववि-

धाओं के जो कि. मनुष्यको उपयोगी हैं ख़ज़ाने हैं तौ भी बुद्धिको सूक्ष्म करके वेदोंके ठीक २ अर्थ समझनेका साधन दर्शनोंके विना दूसरा नहीं मिलता।

"हरचे वकामत केहतर वकीमत बेहतर"

जिस प्रकार हीरा आकारमें छोटा और मूल्य में बड़ा होता है ठीक उसी तरह ऋषियोंने अपने तपके प्रभावसे, समाधिस्थ होकर वेद मूलक छोटे २ सूत्रोंका प्रकाश किया है।

ईश्वर, जीव, और प्रकृतिके विषयमें कोई प्रश्न ऐसा नहीं छोड़ा जो हल न कर दिया हो। उपनिषदों और दर्शनोंके विचारसे मनुष्यका संदेह और दुःख शोक दूर होजाता है उन प्राचीन ऋषियोंको जो भारत वर्षमें स्थान २ पर अपने उपदेशोंसे सन्तप्त अन्तःकरणों को शान्त करते थे ध्यानमें नहीं लासकते हैं तो वर्तमान काल में महानुभाव ऋषि दयानन्द जी महाराजके विचित्र चरित्र पर रौशनी डालें और लाभ उठावें।

शिक्षा। ब्रह्मचर्य्यका पालन करते हुए विद्याके प्राप्त करनेके अनन्तर जब ऋषि कृत ग्रन्थों का स्वाध्याय किया तो ऋषिको यह विदित हो गया कि पाखंड प्रपंच बढ़ जाने से आर्ष सिद्धान्त जिनका वेदोंके साथ सीधा सम्बन्ध है दबचुका है जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें घासके उत्पन्न होजाने से पगडण्डीका पता नहीं चलता, जिसके समझे विना मनुष्य सीधे मार्गसे दूर होजाता है। यह जानकर कि ऋषिने वेदों की रक्षाके लिये जिस प्रयत्न और पुरुषार्थसे काम लिया वह सब पर प्रगट है यदि आप भी

वेदोंकी रक्षा करना चाहते हैं तो ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के पढ़ाने का प्रबन्ध करो बिना इनके वेदों की रक्षा नहीं होसकती और बिना वेदों की रक्षाके हम सुरक्षित नहीं रह सकते।

(२) इस विषय में ऋषिका विचार बड़ा ही स्थायी और दृढ़ था और उनको पूर्ण विश्वास था कि मनुष्यको धार्मिक बननेके लिये सच्चरित्र होना आवश्यक है जब तक मनुष्य सदाचारी न होगा, तब तक उसके अन्तःकरण में धर्मका चित्र खिंच ही नहीं सकता। इन दोनों का सम्बन्ध घनिष्ट सम्बन्ध है इसमें सन्देह हो ही नहीं सकता, कि जो मनुष्य चाल चलनसे ठीक नहीं वह धर्म्म हीन अवश्य होगा इन दोनों की अनुपस्थिति में मनुष्य पुरुषार्थ हीन मति मलीन होकर अपने नाशका कारण बनजाता है सच कहा है:-

पुरुषार्थ नहीं जिस पुरुष में, वह पुरुष पुरुषाकार है।
पुरुषार्थ बिना इस पुरुष के, जीवन पै शत धिक्कार है॥

आप इन के जीवन से शिक्षालें और पुरुषार्थी बनने का यत्न करें, बिना इसके कोई भी काम धार्मिक हो वा व्यवहारिक चल नहीं सकता।

(३) निष्काम भावसे ऋषिने जो उपकार आर्य जनता पर किये हैं यदि विचार करें तो तन मन धन सब कुछ देकर भी हम मुक्त नहीं हो सकते। यह पचास वर्षका समय जबसे ऋषिने उपदेश आरम्भ किया, आर्य जाति को मिटाने के लिये विचित्र शक्ति रखता था, और किसीको इसका भ्रम भी न था। ध्यान से सुनिये कि जब इंगलिश भाषा की उन्नतिके समय साइंस ने ज़ोर पकड़ा तो उसकी युक्तियों

और प्रमाणोंके सन्मुख पौराणिक धर्म सिद्ध होने लगा। पौराणिक धर्म्म ही नहीं, प्रत्युत जितने मत जारीथे सबमें खराबियें प्रतीत होने लगी। किन्तु आर्य्य जाति वैदिक सिद्धान्तोंसे अभिज्ञ थी। बताओ किसका सहारा पकड़ते ईसाई मत था नास्तिकताकी जंजीरों में जकड़ जाते इस भारी समूह के निकल जाने से शेष क्या रह जाता है, जिस सांइसके आगे दुनियाके मत लजाते और सिर न उठाते थे. जब ऋषि ने अपने तपोबल से वैदिक प्रकाश दिखलाया, तो जिस सांइसने प्रचलित मतोंके सिद्धान्तों को धमकाया था, वैदिक सिद्धान्तों के आगे अपने सिर को झुकाया। बहुतसे साईंस जानने वालोंके मस्तिष्क (दिमाग) पर अधिकार पाया और उल्टे मार्ग पर जाने से बचाया। यह है ऋषिका तपोबल, हम इसके बदले में केवल वैदिक धर्म्म का प्रचार करने से ही मुक्त हो सकते हैं, पुरुषार्थ को धारो धर्म्म को सुधारो।

(४) यह हमारे सौभाग्यका कारण है कि ऋषि संस्कृत के अतिरिक्त और कोई भी भाषा नहीं जानते थे, यदि थोड़ी अरबी फ़ारसी या इंगलिश जानते होते, तो लोगों को यह सन्देह अवश्य होताकि यह संस्कृतकी शक्ति नहीं, प्रत्युत इंग-लिश या फारसीका बलहै। ऋषि ने इस बातको सिद्ध कर दिया कि जो विद्या नियमानुसार प्राप्तकी जावे वह मनुष्यको प्रतिष्ठित बनानेका कारण होतीहै। नियम विरुद्ध विद्या प्राप्ति अज्ञानयुक्त होतीहै। इसमें प्रमाण यह है कि आज काशी में बहुतसे विद्वान वर्त्तमान हैं और धर्म्म मर्यादा की दुर्दशा उन

के सामने उपस्थित हैं किन्तु कोई भी इस मर्यादा को स्थिर करनेके लिये तैयार नहीं। गिरी हुई धर्म्मकी अवस्थाका सुधार सदैव विद्वानों द्वारा ही हुआ करताहै। विद्या हीन इस मर्यादा को स्थिर करनेमें निर्बल होतेहैं। क्या कारणहै कि पूर्ण विद्वान होते हुए भी खामोश कर्तव्य फरामोश हो रहे हैं। कारण यह प्रतीत होताहै कि विद्या के साथ आत्मिक बल मिलकर मनुष्य को परोपकार करनेके लिये बाधित करता है। आत्मिक बलके न होने से आलस्य और प्रयोजन सिद्धिकी जंजीरमें जकड़कर परोपकार करनातो एक ओर, उल्टा मनुष्य जातिकी हानिका कारण हो जाताहै। आत्मिक बलके साथ मिलकर विद्या सीधा मार्ग बताती है, इसके न होनेसे अज्ञानतासे बदल कर उल्टा मार्ग दिखाती और दुःखको बढ़ातीहै। इसलिये ऋषिने आत्मिक बलयुक्त होकर विद्यासे काम लिया और अपने उद्देश्यको पूरा किया। उचित है कि हम लोग आत्मिक बलके साथ २ विद्या को ग्रहण करें और लोक उपकारके लिये तैयार हों।

(५) यह सत्य है, इसमें संदेह हो ही नहीं सकता, कि जब मनुष्यका मन बुरे विचारों का घर हो जाता है तो आत्मा निर्बल हो जाता है। शुभ विचारोंके उत्पन्न होनेसे आत्मिक बलकि जो मनुष्य शरीरमें जादूका सा प्रभाव रखती है और जो मुक्तिका मुख्य हेतुहै निकल आताहै। ऋषिने इस आत्मिक बलको कैसे बढ़ाया और इसमें आने वाली रुकावटें दूर करने में किन २ साधनोंका प्रयोग किया। साधन शून्य मनुष्य किसी काम में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इस लिये किसी वस्तु को प्राप्त करनेसे प्रथम उसके कारणको प्राप्त करना होता है,

अतः आत्मिक बलको प्राप्त करनेके लिये स्वामी जी सदैव प्रयत्न करते रहते थे। एक बार जब स्वामीजी महाराज सूर्य उदयसे प्रथम स्नान करके यमुनाके किनारे समाधि लगाकर बैठेथे उस समय एक स्त्रीने स्नान करनेके बाद साधु जानकर सद्भावसे उनके पांव पर अपना सिर रख दिया। ठंडा कपड़ा पांव पर लगनेसे स्वामीजीकी आंख खुल गई, क्या देखाकि सामने एक युवती स्त्री खड़ी है, देखने के बाद हाथ जोड़कर कहा, "कि माता यहां से जाओ," इसके बाद आगेको होने वाला ऋषि दयानन्द क्या उपाय सोचताहै कि यह वस्तुजो सामनेसे इस समय गुजरी है क्या मेरे ब्रह्मचर्य्य व्रत तोड़ने का निमित्तलो न हो जायेगी। क्या यह स्वप्न देखा है अथवा किसी ने मेरी परीक्षा करनेके लिये कोई निराला ढंग निकाला है क्या यह भ्रम है या सत्य है? क्या यह संस्कार प्रबल होकर मुझे दूषित कर देंगे अथवामैं इसका कोई उपायकर सकता हूं। हे प्रभु! आप कृपा करें आपही दया करें, विघ्नों के दूर करनेमें सहायता दें, इस प्रकारके अनेक विचार अन्तःकरण में लहरें मारने लगे। आखिरकार वीर, धीर, गंभीर, उठा और शहरके बाहर होकर गोवर्धनकी ओर चला। शहर से दो तीन कोस बाहर जंगलमें एक मंदिर जिसमें कोई मनुष्य नहीं रहता था देखा। वहां आंख बन्द करके पद्मासन लगा ईश्वर चिन्तन में हो गया। दो दिन और दो रात बीत गये प्यास सताती है ल पीनेका संकल्प नहीं करते, भूख का कष्ट सहते हैं किन्तु ।भ. I करने नहीं जाते, नींद आती है किन्तु सोते नहीं, ४० घंटे बीत जाने पर अपनी परीक्षा स्वयं ही करने लगे, वह

चित्र युवती स्त्रीका जो देखाथा कोसों दूर हो गया, चारों ओर भूख प्यास और नींदका ही चित्र दृष्टि गोचर होने लगा ॥

उस समय जिस प्रकार एक भारी पहलवान् (मल्ल) को पछाड़कर एक मल्ल, किसी कठोर परीक्षासे पास होकर विद्यार्थी और शूरवीर रण भूमीको जीतकर लौटता हुआ प्रसन्न होता है, ठीक उसी प्रकार आगेको ऋषिकी पदवी पाने वाला ब्रह्म-विद्याका विद्यार्थी दयानन्द कामदेवको जीतकर महानुभाव दण्डी विरजानन्द जीकी शरणमें आता है, पूछनेसे जब यह वृत्तान्त विदित हुआ तो गुरुजी का अन्तःकरण प्रसन्नताका केन्द्र बन गया। आशालता जिसको निराशाकी वायु निर्बल कर रहीथी लहलहाने और फल लाने लगी। यह है विचित्र जीवन चरित्र जो हमको शिक्षादे रहाहै। सज्जन पुरुषो! जहां तक होसके आत्मिक बलको धारण करो, यह बल प्रत्येक शरीर में छिपा हुआ है जो इसको निकाल लेता है वह संसारमें कृतकृत्य होता है नहीं तो सब प्रयत्न व्यर्थ और नष्ट होजाते हैं।

———:-०-:———

धर्म्म उपदेश

जब तलक मनकी कुटिलता दूर न हो जायेगी,
तब तलक राहत न सूरत अपनी दिखलायगी।
दुष्ट भावों ने हो जिसके मनको दूषित कर दिया,
दुष्ट मनकी वासना कैसे मधुर फल लायगी।
कौनसा वह पाप है जिस को न कर डालेंगे हम,
जब कि खुदगर्जी हमारी हमको आ बहकायगी।
ईशनाके बंधनोंमें जो हैं व्याकुल रात दिन,

उनकी मर्यादा हमेशा धर्मको धमकायगी।
स्वार्थी परस्पर में मिलकर कर नहीं सकते हैं काम,
स्वार्थ की मात्रा हमेशा फूटको फैलायगी।
त्यागका उपदेश करते लोभमें जकड़े हुए,
ऐसी उलटी चाल मंजिल दूर करती जायगी।
वैरकी वृद्धिसे वृद्धने तो दुःख उठा लिया,
उनकी सन्तान कब तलक मनसे न इनको भुलायगी।
द्वेषकी अग्नि जलाकर चैनसे सोना कहां,
विकलता बढ़नेसे हरदम शांति घबरायगी।
बांसके भिड़नेसे जब जंगलमें ज्वाला जल उठी,
देखना कुछ कालमें सब भस्मसात बनायगी।
जिसको अपनी लाभ हानिका न किञ्चित ध्यान हो,
ऐसी जनता औरोंको कैसे भला समझायगी।
दुष्ट दूई मनमें है अद्वैतका डंका बजे,
यह अन्धाधुन्दी कहां तक कहर न बरसायगी।
वेदों में विस्पष्ट यह आया है माविद्विषावहै,
सहनाववतु सहनौ भुनक्तु यह श्रुति बतलायगी।
जब तलक वेदोंकी आज्ञाका न मनमें मान हो,
सदमे पै सदमा उठा आंखों से आंसू बहायगी।
रहते हैं कर्तव्यके पालनमें जो बेग़म सदा,
लड़ने भिड़नेकी अचानक उनमें आदत आयगी।
छोड़दो कलह को मित्रो शांतिकी शरण लो,
सर्वथा फिर शांति आनन्द गायन गायगी।

ईश्वर भक्ति

भक्ति की आवश्यकता

सत् सङ्गकी महिमा सारे शास्त्रोंने गाई है जिससे जीवात्माका जो भी क्षणसत् सङ्गमें व्यतीत हो जावे वही क्षण शुभ है। यद्यपि आज इस वातको जानते हुये भी हमने अपने जीवनोंको अधिकतर सांसारिक कामोंमें लगाना ही धर्म समझा हुआ है, परन्तु प्राचीन समय में एक दो घंटेके लिये प्रत्येक पुरुप ईश्वर गुण वर्णन और विचार में समय व्यतीत करता था, जिस प्रकार हवनकी महिमा है। प्रातःकालका हवन अपनी सुगंधि से धीमे २ वायुको पवित्र करता है, उसमें न्यूनता होनेसे संध्या कालमें फिर हवन किया जाता है इसी प्रकार प्रातः के सत्सङ्गसे वह अभ्यासी पुरुप संध्या तक रंग रहते थे फिर संध्याको सत्सङ्ग का और रंग चढ़ाते थे। परमेश्वर का चिन्तन मनुष्यको सुख की ओर ले जाता है। वेदोंका महत्व देखें एक २ मंत्र जीवन को पवित्र करता है। जो ऐश्वर्य्य हम चाहते हैं उनका केन्द्र भी वेद मंत्र है।

परमात्मा वतलाते हैं भूत, भविष्यत और वर्तमान इन तीन कालों की गति परमेश्वर में नहीं है। उसमें केवल वर्तमान काल है। परन्तु केवल वर्तमान क्यूं? बताइये आपके साथ किस कालका सम्बन्धहै भूतका अथवा भविष्यत् का? जो भूत हो गया वह गया और जो भविष्यत् है वह आकर वर्तमान वन जायगा इसलिये वर्तमान काल किसी दशामें भी अलग नहीं होता सदा ही "वर्तमान काल" का सम्बन्ध आपके साथ

है परन्तु प्रतीत नहीं होता । इसी प्रकार परमेश्वर की सहायता आपके साथ है परन्तु तुमको प्रतीत नहीं होता । प्रश्न यह है कि वर्तमान को किस प्रकार जाने ? क्या चार घंटे दो घंटे अथवा एक घंटे को वर्तमान कहते हैं । नहीं ! यह "वर्तमान काल" कुछ और है । भूत और भविष्यत दोनोंको अलग करने वाली शक्ति वर्तमान काल कहलाती है । ऐ संसार के मनुष्यो ! वर्तमान कालकी प्रतीति नहीं होती परन्तु वह है, इसी प्रकार परमेश्वर की सत्ता प्रतीत नहीं होती परन्तु तुम्हारे साथ बराबर विद्यमान है । दूसरी ओर बतलाया है कि परमेश्वर सुख स्वरूप है कोई भ्रान्ति वहां नहीं । हम सुख चाहते हैं । सुखका केन्द्र कहां है ? वह केन्द्र वही परमात्मा है । मुझे केवल उससे ही मांगना चाहिये क्यूंकि उसीमें कुछ देनेकी शक्ति है । जिसके पास कुछ नहीं वह मुझे क्या दे सकेगा ? यदि मैं भूखा हूं तो मुझे रोटी वाला ही रोटी दे सकता है । इसी प्रकार हम किसी और से सुख नहीं पासकते परन्तु सुखके केन्द्र से ॥

हमारी गति इस समय उल्टी होरही है । परमेश्वरसे हम नहीं डरते और मनुष्योंसे डरते हैं । जो लोग परमेश्वरसे प्रेम नहीं करते वह संसारमें पग २ पर डगमगाते हैं क्लेश सहते और नाना प्रकार के दुःखोंमें फंसते हैं । दो आंख वालों से हम भय करते हैं परन्तु वह परमात्मा जिसकी सब ओर आंखें हैं जिससे छिपकर कोई काम नहीं किया जासकता हम नहीं डरते ॥

क्या आप कोई ऐसा काम कर सकेंगे जिसमें वर्तमान काल न हो ? जिस प्रकार वर्तमान काल साथ नहीं छोड़ता इसी प्रकार परमात्मा हर समय तुम्हारे साथ लगा हुआ है। देखो वह तुमको देख रहा है अतः कोई बुरा काम न करना स्मरण रक्खो वह असंख्य आंखों वाला तुम्हें देख रहा हैं उससे डरो और किसीसे मत डरो। परमात्मा का भय लोगों को बुरे कामोंसे हटा देता है। जब बुरे काम हट जाते हैं तो फिर बुद्धि निर्मल हो जाती है।

जात कर्म संस्कार में सबसे पूर्व बालक के कान में ओं शब्द कहा जाता है लोग कहेंगे ऐसा क्यूं करते हो ? बालक भला उसे क्या समझ सकता है परन्तु मृत्यु समय भी इसी ओं को स्मरण कराया जाता है और कहा जाता है हे संकल्मित पुरुष ! शरीर से वियोग का समय है अंब उसी ओं का स्मरण कर जिसका पहिले किया था। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब तक जीवित रहे तब तक ओं का स्मरण करता रहे। यह स्मरण अभ्यास से ही होता है। यदि आप अभ्यास करते रहें तो मृत्यु का मुकाबिला सहज हो जाता है, जैसे स्वामी दयानन्दजी ने शांति के शब्दों को उच्चारण करके प्राणों का त्याग किया था, यदि उस प्रभु की महिमा को न जानोगे यदि उसके नाम का जाप न करोगे तो स्मरण रक्खो तुम बुद्धिमान नहीं कहला सकते।

है परन्तु प्र
यता अ
यह
महान प्रभुकी
शरण को

शरीर के साथ जीवात्मा का जो अब सम्बन्ध है इसे अत्यन्त उपकारक समझो और प्रभु भजन करो, यही तुम्हारे संग चलेगा इतना ही नहीं परन्तु जो लोग प्रभु स्मरण नहीं करते वे कृतघ्न हैं। कृतघ्नता संसार के सब पापों से बढ़ कर है। यदि एक पुरुष हमको १०) रु० की नौकरी देता है तो उसका दोकर जोड़ धन्यवाद करते हैं प्रत्युत जिसने हमारे शरीरके अमूल्य अंगों को दिया हैं उस का यदि आधा घण्टा स्मरण न करें तो हम कितने कृतघ्न होंगे? स्मरण रक्खो कि कृतघ्न पुरुषों को संसार में कभी सुख नहीं हुआ। इसलिये प्रातः और सायंकाल में अपने आत्मा को उससे जोड़ो इससे तुम्हारे संसारिक व्यवहार भी नहीं बिगड़ सकते। क्योंकि शास्त्र कहता है कि प्रातः ४ बजे उठकर उसका स्मरण करो। किसका स्मरण? जिसके भीतर चारों वेद आजाते हैं, जिसने सारे जगत को रचा है। श्रुति कहती हैं कि जो लोग वेदों को पढ़कर प्रभु को नहीं पहचानते उनका वेद पढ़ने का लाभ ही क्या है?

आप अपने आप को एक व्यायाम शाला के ऊपर खड़ा देखो दो मल्ल (पहलवान) उठते हैं एक दूसरे को गिराना चाहता है अन्त को एक गिरा और दूसरेने गिराया। गिराने वाले का मुख प्रसन्न है विजाय ने उसके मुखड़े को कुरूप होते हुए भी सुन्दर बना दिया है। गिरने वाले के मुख का रंग उड़ गया है यह क्यों? आर्य्य पुरुषो एक का सम्बन्ध सफलता के साथ है दूसरे का असफलता के साथ। यत-

लाओ तुम कैसा बनना चाहते हो सफलता को प्राप्त होना चाहते हो अथवा असफलता को ! आप इस संसार रूपी अखाड़े में उतरे हुए हैं। अतः आओ सिद्धिके मार्ग परचलें यदि हम आलस्य और शिथिलतामें पड़े रहें तो सिद्धि कैसे मिलेगी आज सांसारिक आनन्द और विषय वासनाओं में पड़कर मृत्यु का भय मिटा दो परन्तु मृत्यु पीछा नहीं छोड़ेगी धन उपार्जन करने वाले, विद्यार्थी अभियोग करने वाले के साथ मौत लगी है। एक २ क्षण, घड़ी २ दिन रात व्यतीत होने से हम मृत्युके निकट होते जाते हैं परन्तु हमने उसे कभी विचारा ही नहीं।

शिकारी कुत्ते जिस खरगोशके पीछे लगते हैं तो खरगोश थक कर झाड़ी में मुंह देलेता है और समझता है कि कुत्ते चले गये। परन्तु कुत्ते नहीं हटते वे आदबोचते हैं। इसी प्रकार यदि मृत्युका चिन्तन नहीं तो मृत्यु हट नहीं जाती वह आएगी और अवश्य आएगी। एक मनुष्य लाठी लिये मेरे पीछे भागा आता है मैं बचने का यत्न करता हूं परन्तु कहां जाऊं ? वह मुझसे बढ़कर पराक्रमी है। मुझे ऐसे सहायककी आवश्यकता है जो मुझसे और मेरे मारने वालेसे अधिक बलवान हो तब मैं बच सकता हूं हमारे पीछे मृत्यु लगी हुई है। कालसे बढ़कर कौन बली है। क्या डाक्टर,महारानी विक्टोरिया को कई डाक्टर एक क्षण भी अधिक जीवित न रखसके। इस रोगका कोई वैद्य नहीं। परन्तु विचारो परमात्मा में मृत्यु की गति नहीं वह इससे ऊपर है जिसने उनकी शरणली वह मृत्युके पंजेसे बचगया वह उसके

भयसे बाहिर निकल गया। जिसकी आज्ञासे अग्नि तपता है: जिसकी आज्ञा से सूर्य्य चन्द्र और पृथ्वी खड़ी है मृत्यु भी उसकी आज्ञासे चलती है उसकी शरण पकड़ो। फिर तुम्हारा कोई शत्रु न रहेगा। इसके लिये पहले अभ्यास शील बनो। उस मृत्युसे अधिक बली शरण देने वाले प्रभु का स्मरण करो और वह तुम्हें अपनी गोद में लेकर निर्भय करदेगा॥

झूठे संसारिक प्रेम का दृष्टान्त।

एक २०–२२ वर्ष का युवक साधुओं के पास जाता साधु उसे कहते हैं पुत्रः तुम होनहार हो संसार का उपकार कर सकते हो घरको छोड़ कर संसारके उपकारमें लगो। लड़का कहता है मैं पिताका एक ही पुत्र हूं मेरे विवाह हुए अभी दो वर्ष हुए हैं मेरा पुत्र अभी छोटा सा है मैं भला कैसे जासकता हूं। क्या यह पाप नहीं है कि इस प्रकार माता और अपने पुत्र आदिको छोड़ दूं? साधु कहता है पाप उस के लिये है जो घरसे व्यभिचार करनेके लिये निकलता है अथवा कोई पाप करनेके लिये जाता है। पाप उसके लिये नहीं है जो संसारका उपकार करने के लिये निकलता है। वह लड़का फिर भी नहीं मानता और अपने माता पिताका हाल वर्णन करता है। साधु ने उसको प्राणायाम सिखलाया और कहा हम तुमको उसके प्रेम का परिमाण दिखलावेंगे। एक दिन उसको कहा कि तुमने किसी रोगका बहाना करना और फिर दूसरे दिन प्राण चढ़ाकर लेटजाना। उस लड़केने ऐसा ही किया। और सांस चढ़ाकर मुर्दोंकी तरह लेट रहा,

घरके लोग रोने पीटने लगे हाहाकार मच गया लोग भी सहानुभूती प्रगट करनेको आये और कहने लगे हाय शोक! माता पिताका एकही लड़का चल बसा। उस साधु ने भी यह समाचार सुना और लड़केके घर आकर उसके माता पिताको कहने लगा हे गृहस्थियो रोना वन्द करो ठहर जाओ मैं तुम्हारा पुत्र जीवत कर सकता हूं। साधु ने झूठ ही कुछ पढ़ना आरंभ किया और फिर दूध मंगवा कर उसके पास रख दिया और कहा यह लड़का तव जीवित होसकता है यदि इसका कोई प्यारा मित्र, माता पिता, वहन भाई, स्त्री या पुत्र दूधको पीले? परन्तु जो भी इस दूधको पियेगा वह मर जावेगा।

अव वारी २ सवको दूधके लिये कहा जाता है परन्तु उसके सारे सम्वन्धी कोई न कोई वहाना करके टाल देते हैं। मित्र यह दृश्य देखकर पहिले ही खिसक गये कि कहीं हमें न दूध पीनेको कहा जावे। जव यह दशा हुई साधु ने ऊंचे स्वर से कहा "हे संवंधियों की झूठी प्रेम शृंखला में वंधे हुये! देख और ध्यान से देख कि वे तुझको कितना प्रेम करते हैं और तू उनके लिये सारे संसारको अलग किये वैठा है अव उठ वैठ और उनका परित्याग करके संसार का उपकार कर" लड़का उठ वैठा और उसके मनमें वैराग उत्पन्न हुआ। शास्त्र कहता है धर्म के विरोधी माता पिताको छोड़ दो॥

हमारे जैसे सहस्रों कायर पापी निरर्थक हैं एक ही यत्नवान उपकारी जीव वेड़ा पार कर देगा। यदि अपने आप को वलवान वनाना चाहते हो तो ईश्वर भक्तिमें दत्त चित्त हो जाओ।

बल धर्म में है—ईश्वर भक्त चनेकी रोटी खायेगा पाप नहीं करेगा हम दूध माखन खाकर भी दुर्बल होते जाते हैं। मनुष्यो बल दूध माखनमें नहीं प्रत्युत भक्ति और कर्त्तव्य पालन में है। जो लोग अपने धर्म पालनमें सिंहकी न्याईं सीधे तरते हैं वे मृत्यु यदि सन्मुख खड़ा हो तो भी आगे जाने से नहीं खिसकते, धर्म सहायता करता है परन्तु केवल धर्म २ पुकारने से नहीं। धर्म ने उस समय तुम्हारी सहायता करनी है जब पुत्र धन, राज्य, और महलोंसे आप को धर्म प्यारा होगा। धर्मसे हंसी ठठ्ठा न करो। मनुष्य कहलाते हुए मनमें गिरावट, पग २ पर बुराई? भाइयो छोड़ दो इन बातोंको। अपने परिवारमें बैठ कर प्रति दिन धर्मका चिन्तन करो। अफलातून ने देखा कि एक पुरुष पागलोंके पीछे जाता है। अफलातून ने उस पुरुषको बुलाया और कहा कि आप तो विद्वान और बुद्धिमान प्रतीत होते हैं आप अपने मस्तिष्क का इलाज कर लें आप पागलों के पीछे क्यों घूमते हैं उसने कहा मेरा मस्तिष्क ठीक है मैं केवल उनकी चाल ढाल देखता हूं, क्योंकि यह मुझे भली लगती है। अफलातून ने पूछा कितने दिन ऐसा करते हो गये? उसने कहा दस दिन। अफलातून ने कहा तुम आधे पागल होचुके हो, अब दस दिन के पीछे पूरे पागल हो जाओगे। विचारों का प्रभाव मस्तिष्क पर बड़ा गहरा पड़ता है जो जिसका विचार अथवा चिन्तन करेगा वह वैसा ही बन जावेगा। वह परमात्मा की भक्ति को भुल कर इस कार्य्य में लग न जायेंगे तो जान कर वह दुःख मार्ग पर अपने आप को डाल देंगे। इसलिये प्रति दिन एक आध घण्टा प्रभु का

चिन्तन किया करो इससे आप अपने आपको और सारे संसारको सुखी कर देंगे। उस समय तुम्हारा कुछ धन अपनी क्षुधा निवारणके लिये और शेषका धन धर्म प्रचारके लिये होगा तुम्हारी विद्या तुम्हें सीधे मार्ग पर लेजायगी। औरोंको पंथ दर्शायगी जो ऐसा करेगा वह प्रभु का प्यारा बनेगा नहीं तो पूछा जाता है और पूछा जारहा है :—

कभी तू काम भी आया किसी दुखिया दरिद्री के
जगत में आन कर तूने किसी से क्या भलाई की
भलाई कर बदी को त्याग दो धर्म्मी बनो प्यारे।
जहां तक हो सके सेवा करो सब प्राणी मात्र की॥
भलाई कर कि वह तुम को भले कामों का फल देगा।
तेरी झोली वही आशा के फूलों से भर देगा॥

——:-o-:——

सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो?

मेरे मान्यवर सद् गृहस्थों और माताओ! मेरे आज के व्याख्यानका विषय "सुख प्राप्ति" है। विषयको स्पष्ट करने के लिये मैं इसे छः श्रेणियोंमें विभक्त करता हूं सुखकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? प्रत्येक मनुष्य और प्राणि मात्र इसीके लिये यत्न कर रहा है परन्तु जिस सुखकी इच्छा हैं मनु जी उसका लक्षण इस प्रकार करते हैं। "सर्वम् परवशम् दु:खम्" पराधीनता दुख है और स्वाधीनता सुख। आज कल जिस स्वाधीनता की ओर लोगों की रुचि हो रही है

मेरा संकेत उसकी ओर नहीं । पराधीनता में किस प्रकार दुःख है उसको मैं एक दृष्टान्त से समझाता हूं—गायन में आप को बड़ा आनन्द आता है आप देखें कि इस में कितनी पराधीनता है सबसे पूर्व बाजे की आवश्यकता फिर बजाने वाले की, यदि बाजा और बजाने वाला दोनों मिल गये आपने एक घण्टा भर सुना मन भर गया दिल उचाट हो गया । आपने कहा बंद करो इस झगड़े को हमें नींद आरही है । इसलिये मनुजी कहते हैं कि इन्द्रियोंके विषयमें सुख नहीं है । इन्द्रियों से प्राप्त किये सुख में पराधीनता है । प्रत्युत पूर्ण आनन्द परमेश्वर जो आदिसे आपके सङ्ग है और सदा रहेगा उसीकी प्राप्ति ही सच्चा सुख है और इसी सुखमें स्वाधीनता है ॥

सुख प्राप्तिके भाग—मनुजी लिखते हैं कि कारण और कार्य्यका जो सम्बन्ध है और जो उसकी गहराई को न समझेंगे वे कभी सफलताको प्राप्त न होंगे । जैसे एक पुरुष को दहीकी आवश्यकता है । परन्तु वह नहीं जानता कि दही किस प्रकार बनता है वह कभी आटे और पानी को मिलायेगा और कभी किसी और वस्तु को । परन्तु जो जानता है वह तुरन्त दूध लेकर दही जमाएगा ॥

सुख एक साध्य वस्तु है । इसके साधन क्या हैं ? इन को जानने की आवश्यकता है । सुख के पार्सल बाहिर से नहीं आया करते यह तुम्हारे अन्दर भरा पड़ा है, और इस के साधन भी तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं । ऋषि कहते "प्रीति पूर्वम् सुखम्" जहां प्रेम है वहां सुख है । प्रीति दुकानों पर नहीं बिकती, यह भी तुम्हारे अंदर ही है । प्रीतिकी

प्राप्ति का साधनें विश्वास है। इसीलिये शास्त्र कहते हैं "विश्वास चोरु का प्रीति" जहां विश्वास है वहां प्रीति है। विश्वासके विना प्रीति नहीं हो सकती। विश्वास कहां है? वह भी आपके हृदय मंदिरमें विद्यमान है। परन्तु यह उत्पन्न कैसे होता है? शास्त्रकार कहते हैं "सत्यमूल को विश्वासः" जहांपर सत्य है वहांपर विश्वास है। अब यह कैसे जानें कि यह सत्य है इसके लिये विद्याकी आवश्यकता है। इसीलिये तो कहते हैं कि "विद्या बलवति भवति" विद्या बल के देने वाली है। अब इस कठिनता की व्याख्या होगई अर्थात् विद्याने सत्यको, सत्यने विश्वासको उत्पन्न किया, विश्वाससे प्रीति हुई और प्रीतिसे सुख प्राप्त होगया, यही हमारा साध्य है और इसी विषयपर मैंने आपके प्रति कुछ वर्णन करना है।

"प्रीति" सबसे पूर्व हम प्रीतिको लेते हैं संसार में जितना काम हो रहा है वह सब प्रीति और प्रेमके आधार पर है। एक समय था कि मट्टी अपनी यथार्थ दशा में थी पानी मिलाकर ईंटें बनाई गईं। अब ईंटें पृथक २ हैं, कोई काम इनसे नहीं लिया जा सकता परन्तु जिस समय कारीगर ने इन पर गारा और चूना जमा दिया वे पृथक २ ईंटें मकान के रूप में हो गईं। यही प्रीति का काम है। जैसे दो ईंटोंके मध्य में चूने और गारेने काम किया इसी प्रकार जिस सभामें बुद्धिमान पुरुष अपनी बुद्धि और प्रेम रूपी गारेको काममें लाते हैं उन सभाओंकी उन्नति होती है। जिस प्रकार दरजी सूई और धागे से वस्त्रों को जोड़ देता है इसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष अपनी बुद्धि की सूई से सभाको यथार्थ स्थान पर पहुंचा देते हैं॥

अब दूसरी दशापर विचार करें, गाने वाला राग अलापता है यदि तबला अलग हो और हारमोनियमकी स्वर ठीक न हो तो आनन्द नहीं आता । यदि तबला और हारमोनियम का विरोध निकाल दिया जावे तो सबको आनन्द आता है अपने शरीरको ही ले लीजिये शरीरमें वायु, पित्त, कफ है । इनमेंसे यदि कोई भी न्यूनाधिक हो तो मनुष्य रोगी हो जाता है तीनोंके मिलापसे ही स्वास्थ्य है । परस्पर मेल मिलाप ही संसार को चला रहा है ऋतुव्रतः पिता पुत्र वेद कहते हैं कि पिताके अनुकूल पुत्र हो, पतिके अनुकूल पत्नी हो, भग्नीके साथ भग्नीकी प्रीति हो, गुरुके साथ शिष्यका द्वेष न हो, भाई २ के साथ शत्रुता न करे परन्तु हमारे यहां सब बात ही विपरीत हो रही है एक कवि ने कहा है:—

नहींहै प्रेमकी भारतमें सुगंध, इसी कारणहै फैली इसमें दुर्गंध।

दूसरा वेद मंत्र बतलाता है "सहना ववतु सहनौ भुनक्तु परमात्मा उपदेश करते हैं हे मनुष्यो तुमको उचित है तुम मिल कर एक दूसरेकी रक्षा करो कभी परस्पर द्वेष न करो लड़ाई झगड़ा तुम्हारे निकट न आये । भला इन वेद मंत्रोंका निरादर करके कौन शक्ति है जो जीवित रह सके । अतः यदि अपने जीवनको स्थिर रखना चाहते हो तो परस्पर प्रीति बढ़ाओ ॥

२ विश्वास–विश्वास प्रीतिका मूल कारण है । जिस के अन्तःकरणमें विश्वास नहीं होता उसमें जागृति नहीं आसकती । बद्रिनाथ की कठिन घाटियों पर चढ़ना सुगम नहीं परन्तु एक वृद्ध स्त्री जिसके मनमें विश्वास है वह बड़ी फुर्तीके साथ चढ़ जाती है । विश्वास हिन्दुओंमें कूट २ कर

भरा हुआ है परन्तु हिन्दुओंके विश्वासमें सत्य नहीं इसलिये इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता। दूसरी ओर आर्य्य समाजमें सत्य है परन्तु श्रद्धा और विश्वास नहीं। गुरुकुल के उत्सवमें जाने वाले यात्रियोंको दो मील पत्थरों पर चलना पड़ता है परन्तु कई लोग कहते हैं इस वार बड़ा कष्ट हुआ अब न आएंगे परन्तु इसके प्रत्युत बद्रिनाथ की घाटियों पर चढ़ने वालोंमें कितनी श्रद्धा है शत २ मील पैदल चले जाते हैं परन्तु श्रद्धामें कोई भेद नहीं पड़ता इसलिये आवश्यकता है कि या तो हिन्दुओंका विश्वास आर्य्यों में आजाय या आर्य्योंका सत्य हिन्दुओं में चला जावे तब ही दोनोंको सफलता प्राप्त होसकती है।

३ सत्य–विश्वास सदा सत्यवादीयों का होता है झूठे पुरुषोंका संसारमें कोई विश्वास नहीं करता। एक भांड नकल किया करता था उसके पैरमें पीड़ा होने लगी पीड़ा से वह बहुत व्याकुल होगया परन्तु लोगों ने समझा कि यह अब भी नकल ही कर रहा है किसी ने विश्वास न किया किसी मनुष्य तथा किसी सम्प्रदायका जीवन तब ही है जब तक उसका विश्वास है विश्वास गया और जीवन नष्ट हुआ। इसलिये विश्वासको स्थिर रखने के लिये "सत्यकी आवश्यकता है परन्तु सत्य और एक मन्तव्य।

४ विद्या–के बिना नहीं हो सकता। पंजाबी में एक कहावत है "सौ स्याने एक मत्त विद्वानों का एकमन्त होता है।"

अकबरने इस सत्यताकी परीक्षाके लिये बीरबलसे कहा। बीरबलने कहा कि आप सारे मन्त्री मंडल तथा अन्य

विद्वानोंको आज्ञा दें कि रात्रीके समय प्रत्येक पुरुष एक लोटा दूधका अमुक हौज़में डाल दें। सारे विद्वान थे सब ने यही विचारा कि जब सब दूध डालेंगे तो मेरे एक जल के लोटे से कुछ प्रतीत न होगा इस विचार का परिणाम यह हुआ कि जब अकबर हौज़ देखने गया तो हौज़ जल से भराथा उसमें दूधका नाम न था उस समय बीरबल ने कहा देखो महाराजा सारे विद्वानोंका एक मत्त होता है यह एक कथा थी इसको जाने दें। क्या आप नित्य प्रति नहीं देखते कि जब एक परीक्षक श्रेणीको प्रश्नका उत्तर देनेकी आज्ञा देता है तो जो विद्यार्थी ठीकउत्तर देते हैं उनका उत्तरएक होता है परन्तु जो अशुद्ध उत्तर देते हैं उनमें से प्रत्येकका उत्तर भिन्न २ होता है। संसार में जितनी भूल बढ़ेगी उतने ही मत बढ़ेंगे।

वेदों में सत्यता है। उपनिषदों से पूर्व जब वेदोंका काल था शतशः ऋषि विद्यमान थे। यदि १०-१० ऋषि भी एक मत निकालते तो कई मत प्रचालित होजाते परन्तु हम देखते हैं कि उस समय एक वेदोक्त मतका प्रचार था। जूंही वैदिक धर्म्म शिथिल हुआ हज़ारों मत मतान्तर होगये।

सूर्य्य रूपी स्वभाविक लैम्पके विद्यमान होने से किसी और लैम्पकी आवश्यकता नहीं रहती परन्तु जूंही सूर्य्य अस्त हुआ लोगों ने अपने दिये जलाये। किसी ने तेल का दिया किसी ने गैस लम्प जलाया यह क्यों ? केवल इसलिये कि परमात्मा का सूर्य रूपी लैम्प विद्यमान नहीं। अब इस रात्रिके समय यदि आप किसी को कहें कि अपना दिया बुझा दे तो

वह लड़ाईको उद्यत होगा परन्तु ज्यूंही सूर्य्य उदय होगा सब लोग अपने २ लैम्पोंको बुझा देंगे उस समय किसीको कहनेकी आवश्यकता न रहेगी। इसी प्रकार आप लोगोंको ईसाईयों और यवनोंसे लड़ने झगड़ने की आवश्यकता नहीं वैदिक धर्म्मके नियमोंको उच्च करदो. अपने धर्मको सारे संसारमें फैला दो सारे मत मतान्तर स्वम् दूर हो जावेंगे। जिस प्रकार सूर्य्यके सन्मुख छोटे २ लैम्प कोई स्थान नहीं रखते इसी प्रकार वैदिक रूपी सूर्य्यके सामने इन मतोंको कोई स्थिति न रहेगी।

ऊष्ण ऋतुमें जब कि स्वाभाविक वायुकी न्यूनता होती है लोग पंखे हिलाते हैं परन्तु शीत ऋतुमें जब कि स्वाभाविक वायु अधिक होती है कोई मूर्ख से मूर्ख भी पंखे को वायु सेवन करने को उद्यत नहीं होता इसलिये जिस समय वैदिक धर्म रूपी वायुका ज़ोर होगा कोई भी इन कृत्रिम पंखों को न चाहेगा ॥

उपदेश का फल क्यों नहीं होता।

लोग कहते हैं कि हम तो उपदेश सुनते २ थक गये हैं निःसन्देह आपका थकना आवश्यक है जिस तरह एक एन्ट्रेंसका विद्यार्थी वारम्वार अनुत्तीर्ण होने पर अपने अध्यापक को कहता है कि मैं तो यह कोर्स रटते २ थक गया, परन्तु अध्यापक उसे परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं करता। ठीक इसी प्रकार हम उस विद्यार्थीकी न्याईं अनुत्तीर्ण हो रहे हैं और कहते हैं कि हम थक गये। अब ग्राम निवासियों में प्रचार करके उनको उपदेश सुनाओ। भला कहो तो सही

कि जिस उपदेशसेतुम थक गये हो वह न थक जायेंगे? जब यह उपदेश तुमको कोई लाभ नहीं पहुंचा सका तो उससे, उनको क्या लाभ होगा? जव मैं नवीन वेदान्ती था तो मेरे गुरु स्वामी शिवप्रसाद प्रतिदिन यही रटते थे कि 'रज्जुसे सर्पका भ्रम होता है, परन्तु लोग दूर २ से आकर, उनके इस उपदेशको श्रवण करते थे यहां तो यह दशा है कि सात दिनपीछे समाज अधिवेशन होता है परन्तु हम लोगोंको, उसमें भी सम्मिलित होनेका अवकाश नहीं मिलता हममें धर्म्मके लिये श्रद्धा का लेश मात्र नहीं है। जव गौ के आगे घास डाला जाता है तो पहिले जल्दी २ उसे खाजाती है, उसके पीछे धीरे २ जुगाली करती है। यही जुगाली उसके पालन पोषण और उसके दूध का कारण होती है इसी प्रकार उपदेशोंको सुन लेना घासको जल्दी से खा लेना है परन्तु इसका नित्य प्रति चर्चा करना और उसको मनन करना ही जुगाली करना है। उपदेशोंसे मन इसलिये उचाट हो जाता है कि हम उनका मनन नहीं करते। सत्य की सदा जय है और यही सीधा मार्ग है परन्तु इस पर अधिकार जमाना बड़ा कठिन है विद्याके विना सत्य पर अधिकार नहीं जम सकता। इसलिये ब्राह्मणोंने विद्याको ग्रहण किया। वह धनकी ओर नहीं झुके। उन्होंने राज्य नहीं लिया। आपके पास १०००) है आपका मन चाहता है कि इसमेंसे ५००) गुरुकुलको दे दें आपने दे दिया अब आपके पास तो ५००) की न्यूनता होगई परन्तु विद्या एक ऐसी वस्तु है कि जितना इस पर दान करो उतनी ही यह बढ़ती है इसलिये परमात्मा

ने पहिले चार ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। ब्राह्मण होंगे तो क्षत्रिय वैश्य वह स्वयं उत्पन्न कर लेंगे, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मण उत्पन्न नहीं कर सकते। एक कथा है कि एक बार सिकन्दर और अरस्तु सफ़रमें निकले, मार्गमें एक समुद्र पड़ा, जो बहुत वेगमें था अरस्तु ने सिकंदरको कहा कि पहिले आप नैय्या में बैठकर पार हो जायें फिर मैं आजाऊंगा। परन्तु इस बात को सिकंदर न माना और पहिले अरस्तु को भेज दिया। जब दोनों एकत्र हुए तो अरस्तु ने कारण पूछा। सिकन्दर ने उत्तर दिया कि अरस्तु सिकन्दर उत्पन्न कर सकता है परन्तु सिकन्दर अरस्तु को नहीं उत्पन्न कर सकता संसार में जितने आविष्कार हैं सब विद्या का बल है।

सदाचार—विद्या सदाचारसे प्राप्त होती है। जिस विद्या के साथ सदाचार नहीं वह विद्या अविद्यामें परिवर्तन हो जाती है। जिस प्रकार दूधमें खटाई पड़जानेसे दूध फटकर अपनी यथार्थ दशामें नहीं रहता उसी प्रकार जिस विद्याके साथ सदाचार नहीं वह विद्या अपने स्वरूपको छोड़ देती है इसीलिये तो मनु ने विद्या के साथ तपको आवश्यक ठहराया है। दियासलाईसे जहां हमें प्रकाश मिलता है वहां चोरभी अपने काममें इससे सहायता लेते हैं अब इसमें प्रकाश अथवा दियासलाईका दोष नहीं। विद्याके साथ शारीरिक बलकी बड़ी आवश्यकता है। परन्तु हमारी युवक-मण्डलीकी शारीरिक बलकी यह दशा है कि यदि वायु सेवन की जावे तो भी बाईसिकल पर। आज कल धनवानोंका सुख और व्यवहार (फैशन) निर्धनोंके लिये बड़ा दुःखदायी हो रहा है। एक धनी चाहे वह निरक्षर ही क्यों न हो कोट बूट पतलून पहन

कर तत्काल स्टेशन पर चला जाता है और उसको कोई नहीं रोकता। परन्तु मेरे जैसा रङ्क चाहे उससे कितना विद्वान हो अन्दर नहीं जा सकता। एक धनीके पड़ोसमें निर्धनके बच्चे भूकसे तड़प रहे हों परन्तु उसको दया नहीं आती वह बड़े आनन्दसे घरमें लेटा पड़ा है। प्रयागके कुम्भमें बड़े २ साधुओं को जिनके पास पहिलेही कम्बल और लोईयां होती हैं धनी लोग उनको वस्त्र देते हैं। परन्तु वह निर्धन साधु जो शीतसे तड़पते हैं उनको कोई नहीं पूछता।

भर्तृहरिजी कहते हैं कि सत्यगुणी पुरुषोंके लिये मोक्ष का द्वार खुल जाता है। एकही ज्ञानकी बूंद उन मनुष्योंके लिये सुखमय बन जाती है जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया है परन्तु वही बूंद उनके लिये दुःखमय होती है जिन्होंने इन्द्रियों को नहीं जीता। एकान्त सेवनकी शास्त्रोंने बड़ी महिमा गाई है। भक्त लोग एकान्त सेवनको बहुत चाहते हैं, परन्तु चोरों को भी एकान्त प्रिय है क्योंकि एकान्तमें ही चोर अपने कार्य्य में सफलताको प्राप्त होता है। मैंने आपको बतलाया है कि विद्या तब ही सुखकारिणी हो सकती है जब वह यथाविधि नियमानुसार और सदाचार पूर्वक प्राप्त की जावे। संसारमें मूर्ख इतना अत्याचार नहीं फैला सकते जितना कि सदाचार रहित विद्वान। यदि एक मूर्ख मद्यपान करे तो लोग कहेंगे यह मूर्ख है उसको तो समझ ही नहीं। यदि कोई पढ़ा लिखा मद्यपान करता हुआ देखा जावे तो लोग उससे इसका कारण पूछेंगे वह अपनी निर्बलताको छिपानेके लिये मद्यके प्रति युक्तियां प्रस्तुत करेगा। सर्वसाधारण उसके फंदेमें फंसकर

मद्यका सेवन आरंभ कर देंगे संसारमें अत्याचार फैलेगा। इसके प्रमाणमें आप "महिधर" को देखलें जिसने अपने भाष्य के द्वारा भारतमें मद्य मांसका प्रचार किया। परमात्मा करे विद्वान आचारहीन न हों, क्योंकि संसारमें अनुकरण विद्वानों का होता है मूर्खों का नहीं।

पण्डित गदाधरके विषयमें राजाने कहा कि यदि वह हमारे दरबारमें आगया तो हम उसे १०००००) रु० देंगे परन्तु वह अपनी विद्यामें मग्न था। एक दिन खाने को जब कुछ न रहा तो उसकी स्त्री ने उसे दरबार में जानेकी प्रेरणा की वह घर से चलकर नदी पर आया। और केवटको नाव चलाने को कहा केवटने पैसे मांगे, उत्तर दिया पैसे नहीं। केवटने कहा कि ऐसा ही तू गदाधर है जो तेरे पास पैसे नहीं और राजा तुझे एक लाख रुपया देता है। गदाधरके मन पर चोट लगी फिर वह अपने घर लौट आया। जब राजाने वृत्तान्त सुना तो उसने उसी समय लाख रुपया गदाधर के घर भेज दिया॥

स्वामी दयानन्दसे पूर्व काशीमें शतशः बड़े २ पण्डित विद्यमान थे परंतु किसीको देशकी हीन अवस्था पर ध्यान न आया। परन्तु ऋषि दयानन्द देशकी दुर्दशाको देखकर तड़प उठा। विद्याको संस्कृतके विद्वानोंने स्त्रीलिङ्ग माना है इसका पति सदाचार है। विद्या और सदाचारके समागमसे जो सन्तान उत्पन्न होती है उसका नाम ज्ञान और पुरुषार्थ है, कवि कहता है—

पुरुषार्थ नहीं जिस पुरुष में वह पुरुष वृथा आकार है।
पुरुषार्थ विना उस पुरुष के जीवन पे शत धिक्कार है॥

मैंने आपको बतलाया कि सुख प्राप्तीके लिये सबसे पूर्व विद्याकी ज़रूरत है विद्याके साथ सदाचार आवश्यक है फिर विश्वास, विश्वासके साथ प्रीति और परस्पर प्रेम प्रीति का परिणाम सुख है। यही आज मेरे व्याख्यानका विषय था जो मैंने समाप्त कर दिया॥

अन्तिम निवेदन।

अभी आपको बतलाया गया है कि आर्य्य समाजने बड़े महत्वके काम किये हैं परन्तु अभी आदर्श स्थान बहुत दूर है और आप लड़ने झगड़ने लग गये हैं ऋषि दयानन्दने अपने विद्या बलसे हमें हमारी निर्बलताओंसे सूचित किया परन्तु हम फिर आलस्य और प्रमाद में पड़कर उन्हीं निर्बलताओं में फंस रहे हैं। क्या संसारमें आप लोग यह बात प्रत्यक्ष नहीं देखते कि महान् पुरुष जो काम करते हैं छोटे उनका अनुकरण करते हैं? छोटी आर्य्य समाजों ने आपका अनुकरण किया यदि आप परस्पर लड़ाई झगड़ा करते रहेंगे तो उन बेचारों का क्या हाल। आप सारे प्रान्त के प्रदर्शक हैं। आपके शुभ अशुभ कामों का प्रभाव सारे प्रान्त पर पड़ता है।

वैदिक धर्म का प्रचार तो होगा और अवश्य होगा और मेरा आजका कथन स्मर्ण रक्खो कि शताब्दि के पीछे सारे देश में वैदिक धर्म फैल जावेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि इसको हम फैलायेंगे या कोई और? ऋषि दयानन्दका प्रचार

केवल आर्य्य सभाओं तक संकुचित नहीं रहा परन्तु उनका उद्देश प्रत्येक सभा समाज में काम कर रहा है कुछ दिन हुए कि मैं अजमेरके उत्सवपर जारहा था गाड़ीमें एक पादरी साहिब मिल गये। वार्तालापमें मैंने कहा कि पादरी जी आप की पुस्तक में तो लिखा है कि सूर्य चौथे दिन बनाया गया परन्तु दिन तब ही बनता है जब सूर्य पहले हो पादरी ने उत्तर दिया कि चौथे दिनसे आशय चौथे दरजेसे है मैंने पूछा यह व्याख्या किसने की? उत्तर मिला कि जिसने आपको युक्ति सिखलाई। उन्होंने कहा कि मत समझो कि दयानन्द केवल आपके थे ऐसे महान् पुरुष सब के होते हैं॥

इसलिये भाईयो! लड़ाई झगड़ा त्याग कर वैदिक धर्म्म के प्रचारमें लग जाओ ताकि आने वाली सन्तान तुम्हारा अनुकरण कर सके।

ब्रह्मचर्य्य।

प्रारम्भिक भूल—एक पुरुषने वनमें हरी २ घासमें दियासलाई सुलगा कर फैंक दी, घास पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इस प्रकारके स्वभाव से, प्रेरित होकर पुरुष ज्येष्ठ मास में सूखी हुई घास में दियासलाई फैंक देता है अब क्या ठिकाना है इस भूलसे घास तो अब जल कर रहेगा। इसी प्रकार भारत निवासियोंसे आरम्भ में भूल हुई है पहिली नींव क्या है? 'ब्रह्मचर्य्य' इसको खराब कर दिया है। मनुष्य को अपने जीवनमें ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास

पुरुषार्थ में से गुज़रना पड़ता है। ब्रह्मचर्य्यको प्रथम श्रेणीमें पुरुषा रक्खा गया है? इसलिये कि यह शेष तीन आश्रमों की .व है, इसके बिगड़नेसे सब बिगड़ जावेगा और इसके बनने से सब बन जावेगा। यदि एक राज किसी मकान की नींवमें टेढ़ापन करदे तो फिर कई इंजीनियर दीवारको सीधा नहीं कर सकेंगे। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्यमें टेढ़ापन आजानेसे और इसके दूषित होनेसे तीनों आश्रम खराब हो जाते हैं॥

ब्रह्मचर्य्य कितनी अमूल्य वस्तु है:—ब्रह्मचर्य्यकी महिमा वेदोंने बहुत गाई है वेद कहते हैं कि यज्ञ निष्फल हो जावेगा यदि ब्रह्मचर्य्यका बल इसमें न होगा। जो पुरुष ब्रह्मचर्य्यसे सुरक्षित होते हैं उनको वीर्य्यका लाभ होता है। वीर्य्य क्या है? वीर्य्य शरीरमें सातवीं धातु है। जो भोजन मनुष्य आज खाता है वह हृदयकी अग्निसे पचकर ४½ दिनके पीछे रस बनता है फिर ४½ दिनके पीछे इस अग्नि पर पक कर रुधिर बनता है उसके पीछे फिर अग्नि द्वारा ४½ दिनके पीछे वह रुधिर मांस बनता है फिर अग्नि लगने पर ४½ दिनके पीछे मेधा बनती है, इस मेधा धातुको फिर ४½ दिन अग्निमें तपना पड़ता है जिससे स्नायु बनता है, फिर ४½ दिन पीछे अग्निमें तपनेके पीछे हड्डी बनती है, ४½ दिनके पीछे आगमें तपनेसे यह हड्डी मज्जा बनती है, और ४½ दिनके पश्चात् आगमें तप कर वीर्य्य या शुक्र बनता है सारांश यह कि ३२ दिनके पीछे आजका खाया हुआ अन्न वीर्य्यके रूपमें परिवर्तन होता है। लोग पैसों की अधिक पर्वाह नहीं करते जितना दुर्वाग्नियों

की, रुपयोंकी इनसे अधिक, और फिर यदि पौंड हों तो उनकी सबसे अधिक पर्वाह होती है यदि हीरा हो तो फिर संभाल का क्या कहना। अब कहो जो वीर्य्य इतने परिश्रमसे तैय्यार होता है उसकी रक्षा करनी चाहिये या नहीं? आप एक आमको देखें उसके बीजको सात पर्दोंके बीच संभाल कर रक्खा हुआ है, उसका प्रथम आवर्ण उसकी खाल है जिसके अंदर रस है, दूसरा वह है जिस भाग ने रेशोंको पकड़ा हुआ है, तो तीसरा रस है चौथा परदा गुठली जो कठिन होती है इस गुठलीको कठिनता से तोड़ दें तो इस संदूक के दोनों भागों के अंदर परदे लगे हैं इसके पीछे गुठली है जो कुछ कोमल होती है। फिर उसके अंदर छोटे २ दाने हैं जिन के अंदर आम उत्पन्न करने का पदार्थ है। किस रक्षासे इस बीजको रखा हुआ है, वह बीज यदि पका हुआ हो तो आम कैसा सुगंधि युक्त और स्वादिष्ट होता है। इसी प्रकार जिस मनुष्य के शरीरमें वीर्य्य है उसके मुख पर सौन्दर्य्य और शरीरमें दृढ़ता होती है और वह बलवान होता है।

पुरुष कौन है—परन्तु जब पुरुष वीर्य्य हीन है तो फिर सुन्दर कैसे बने, काम किस प्रकार हो। जब तक शरीरमें वीर्य्यका सञ्चार न होगा तब तक पुरुषार्थ न होगा, और जब पुरुषार्थ न होगा तो काम क्या होगा? एक राजा एक ऋषिके पास गया और उससे कहा मेरी कन्या विवाहके योग्य है मैं क्या करूं? हर घड़ी शोकातुर रहता हूं। ऋषि कहते हैं राजन! किसी पुरुषके साथ इस का विवाह करदो। राजा कहता है क्या अपुरुष के साथ भी कन्या का विवाह होता है यह आप

ने क्या कहा है ? आपने कहा संसारमें बहुतसे पुरुष वास्तव में पुरुष नहीं होते केवल पुरुषके रूप वाले होते हैं। मेरे कथन का तात्पर्य्य यह है कि जिस पुरुषके अन्दर पुरुषार्थ है उसके साथ विवाह करदो । ठीक है यह बात कि जो पुरुषार्थ का लाभ करता है वही पुरुष है और जिसके अंदर पुरुषार्थ नहीं है वह पुरुष नहीं है। वेदोंमें एक मन्त्र आता है कि जिस समय ब्रह्मचारी गुरूके पास जाता है तो गुरू तीन रात्रि उसको गर्भ में धारण करता है उसका आशय यह है कि जिस प्रकार बालक माताके गर्भ में बैठा है माताके संस्कारोंसे अपने संस्कार चला रहा है परन्तु वह कोई चेष्टा नहीं कर सकता विना अपनी वृद्धि के । अतः ब्रह्मचारी गुरु के पास इस प्रकार रहे जैसे गर्भ में है । आज आचार्य भी वैसे नहीं जो शिष्यको ऐसा बनायें और शिष्य भी नहीं जो ऐसा बन सकें । गुलाब की कली कितनी कठोर होती है परन्तु दूसरे दिन उसमें कोमलता आजाती है तीसरे दिन और कोमल उसका मुंह खुल जाता है एक दिन व्यतीत होनेके पश्चात वह कली खिल जाती है और सुन्दर पुष्प बन जाती है। परन्तु यदि माली उस कठोर कलिको हाथोंसे मल २ कर कोमल करे और एक आध घंटा के बल से उसकी पंखडियोंको भी खोल ले तो निःसन्देह वह खिल तो जाएगी परन्तु न वह सुंदर होगी और न सुगंधि देगी वह जल्दी ही मुर्झा जाएगी । इसी प्रकार जिनका ब्रह्मचर्य्य पूरा नहीं हुआ जो अपनी वृद्धि धीरे २ करके और वीर्य्यका सञ्चार करके नहीं बढ़े और उसको हाथों या गंदे भावोंसे तोड़ दिया है तो उनके मुख पर न लाली आती है और न उनके जीवनमें मिठास होता है।

स्मरण रक्खो जिस प्रकार भूगर्भअग्नि पृथ्वीको एक स्थान पर ठहरने नहीं देती हर समय घुमाती और प्रत्येक समय चलायमान रखती है इसी प्रकार वीर्य मनुष्य के अन्दर यदि है तो उसे चालाक फुर्तीला और बलवान बनाता है कभी निरुत्साही नहीं होने देता । वह कभी दरिद्री को देख कर आंख नहीं चुराता जिस के शरीर में वीर्य्य हो वह दुःखियों की सेवा करता है वीर्यहीन पुरुपके पास महान् आत्मा कैसे आ सकती है ? जैसी सामग्री डालोगे वैसी सुगन्धि आवेगी । जो पुरुप दूसरेके दुखमें दुखी होते हैं उनके विचार में कौनसा ईन्धन जलता है देखो वह ईन्धन वीर्य्य है जो इस वीर्यको अपने मस्तिष्कमें जलाते हैं उनके सन्मुख सब वस्तु हाथ बांधे प्रस्तुत होजाती हैं !

ब्रह्मचर्य्य का साक्षात् आदर्श—ऋषि दयानन्द के विचार क्यों इतने पवित्र थे ? राजघाट कर्णवास में जाकर पूछो जब गोकुलिये गुसाइयों का वर्णन किया तो हर एक ग्राम का जीमींदार खड्ग लेकर साम्हने आया स्वामीजी ने कहा क्यों आये हो ? उसने कहा कि आपने हमारा खण्डन किया है इसलिये आप को मार डालना चाहता हूं । स्वामीजी ने कहा कि यदि तू क्षत्रिय है तो किसी राजाको जाकर बाहुबल दिखला और यदि तेरा काम मुझे मारनेसे ही निकलता है तो मुझे मारले । ऐसा उत्साह जनक उत्तर क्यों दिया गया ? इसलिये कि ऋषिके विचार, वीर्य्यका ईंधन जलाने से बहुत पवित्र होगये थे। मनुजीने लिखा है कि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी होकर ही विवाह कर सकता है । यदि मनुजी का यह नियम आज

मे पथ...त हो तो हम सारे विवाह करने वाले दण्ड के अधि-...री होजायें। पहिले तो यह मर्यादा थी कि पहिले पहलवान बनो और फिर अधिकार लो। परन्तु अब यह है कि अधिकार पहले देदो फिर पहलवान बनेंगे। ब्रह्मचर्य्य की मर्यादा जाती रही। हमने इस अमूल्य वस्तु का आदर नहीं किया और अब सभी पश्चाताप कर रहे हैं।

सिंहनी एक बच्चा देती है जो सारे बनके लिये बहुत है क्यों? इसलिये कि वह वीर्य्यवान होता है। वीर्य्यहीन संतान, संतान उत्पत्ति को दृष्टिगोचर नहीं रखती विषय भोग को रखती है जिससे सन्तान बिगड़ जाती है। एक पुरुष प्रश्न करता है कि यह जो हीरा लाखों पौंडों से लिया है इसकी रक्षा क्यों करते हो तो दूसरा उत्तर देता है कि इसे हथौड़े से तोड़ेंगे। इस प्रकार एक पुरुष ५०) तोले का इतर निकालता है और फिर उसे नाली में फेंक देता है तो आप इन दोनों को मूर्ख कहेंगे या नहीं? परन्तु विचार करो और समझो कि क्या वह अधिक मूर्ख नहीं है जो वीर्य्य जैसे अमूल्य रत्न को इतर और हीरे की नांई गंवा देता है।

वीर्य्य वान पुरुषोंकी आपने बहुत कथाएं सुनी होंगी और सुन लीं कथा बहुत सी परन्तु सुनने से क्या होता है कुछ करो भी। स्वयं वीर्य्यवान बनो। ध्यान रक्खो कि तुम्हारा यह अनमोल रत्न वीर्य कहीं चोरी तो नहीं होता, छीना तो नहीं जाता? ऋषि ने एक स्त्री को देखा था तो दो दिन भूखे प्यासे जागते रहे और मन को सीधा कर लिया था। यह थे ऋषि। तुम क्या ऋषि बनोगे यह था

वीर्य्यवान । क्यों नवयुवको ! है तुम में साहस ? तुम एक सुन्दर बूट देख लेते हो और फिर खाट पर लेट कर कहते हो कहीं से रुपया आए तो बूट लें, घड़ी बेचें तो बूट लें, चोरी करें तो बूट लें और क्यों नहीं मन को सीधा करते ? करे कौन वीर्यहीनें भला कैसे कर सकता है ।

ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता—स्मरण रक्खो ! कोई किसी को नहीं गिराता, मनुष्य अपने दुष्कर्म्मों से स्वयं गिर जाता है आज वहुत कठिन समय व्यतीत हो रहा है व्यसन वढ़ गए हैं इसलिये बड़े उद्योग की आवश्यकता है । एक ही व्यसन हो तो विपत्ति ले आता है । यहां तो ठिकाना ही नहीं । कितने तीव्र परिश्रमकी आवश्यकता है इस उद्योग में सफलता प्राप्त करनेके लिये वीर्य्यवान वननेकी आवश्यकता है । और ग्रहस्थ आश्रम भी इससे शुद्ध हो सकता है । अब वानप्रस्थ आता है जब सन्तानकी सन्तान हो जावे तो वानप्रस्थी बनने की आज्ञा है यह इसलिये होता था कि मेरे पुत्रको जिसने पढ़ाया है तो मैं भी किसीके पुत्रको पढ़ाऊं । वानप्रस्थी संसार की विद्वत्ता और महत्व बढ़ानेके लिये आवश्यक है । उसके पीछे सन्यास की वैसी आवश्यकता है जो शरीर के लिये शिर की है । वेदों ने बतलाया है कि संसार हमें आवश्य छोड़ना है चाहे प्रसन्नतासे त्याग दें चाहे अप्रसन्नतासे, इस लिये आश्रमका विधान था कि आप ही प्रसन्नतापूर्वक संसार को छोड़ दें और उसका भला करें । इसलिये यदि आप अपना और देशका भला चाहते हैं तो लग जाओ ईश्वर भक्ति में और छोड़ दो संसारके बखेड़ोंको ।

वैदिक धर्मकी जय उस दिन होगी जब इस कालिज से निकल कर सौ में से ५ लड़के सन्यासी हो जावेंगे गुरुकुल में से बीस में से दो तीन हो जावेंगे और बिना गृहस्थमें प्रवेश किये सन्यासको धारण करके वैदिकधर्मका प्रचार करेंगे। बतलाओ तो सही विवेकानन्द स्वामी विवेकानन्द कैसे बने? उसी समय जब उन्होंने सन्यास आश्रम धारण किया। प्रचार तब होगा जब कालिज से लड़के बी०ए०पास करके सन्यासी बनेंगे और उनके माता पिता प्रसन्नता से कहेंगे कि हां पुत्रो जाओ वैदिकधर्म का प्रचार करो। बुद्ध धर्मका प्रचार कैसे हुआ? स्मरण रखो राजा अशोकके पुत्र महेन्द्र और उसकी पुत्री महेन्द्री की कथा जिन्होंने लंकामें बुद्ध धर्म के प्रचार करनेके लिये अपने आपका समर्पण किया और वहां जाकर बुद्धधर्म सारे देश में फैला दिया। वैदिक धर्मियो सोचो तुम भी तो वैदिक धर्मी हो? है तुम में कोई ऐसा राजकुमार और राजकुमारी, है कोई महेन्द्र और महेन्द्री? वैदिक धर्मको ऐसे सच्चे वैदिक प्रचारकोंकी जरूरत है, ऐसे प्रचारक सन्यासी हो सकते हैं जिन्होंने शारीरिक शक्ति बढ़ाई हो जिनके आत्मा बलवान हो चुके हों। पूर्ण होगा उस दिन आर्य्यसमाज जब नवयुवक सन्यासी होंगे और कालिज से निकलकर बिना गृहस्थमें प्रवेश किये सन्यासी बनकर आर्य्यसमाजका काम करेंगे आर्य्यसमाजमें जो इने गिने सन्यासी थे वह भी कम होरहे हैं एक दो वृद्ध सन्यासी रह गये हैं वह भी जाते रहेंगे। नवयुवको? समझो और सोचो सन्यासकी ओर झुको वीर्य्यवान होकर सन्यासी बनो देखो फिर कल्याण होता है कि नहीं।

रोग की औषधि।

आत्मिक बल—हरिणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
यो ऽसावादित्ये पुरुषऽसे ऽसावहम् ॥

दुख की नींव में सुख—भद्र पुरुषो तथा माताओ! आप के साम्हने अभी एक दृश्य उपस्थित हुआ है। यदि किसी ने विचार किया हो या न परन्तु समझने तथा विचारने से पता लग जावेगा कि क्या वार्ता है इस समय से पूर्व स्वामीजी (स्वामी विज्ञानभिक्षु) ने व्याख्यान आरंभ किया माताओं ने शोर बंद न किया। व्याख्यानको रोकना पड़ा तब उसके पश्चात् शोर बंद होगया। इसका कारण क्या था? यह था कि एक पुरुष ऊपर गया और कहा माताओ शोर मत करो सुनो। दबाव और ख्याल उसका उनके ऊपर पड़ा और दूसरा भय था कि हम शोर करने वाली प्रतीत हो जाएंगी। इसीप्रकार परमात्मा प्रतिष्ठित हैं और ऊंचे हैं। जब कोई देश इस विचारको भूल जाता है तो उसका विचार जागृत नहीं होता तो हम उपद्रव करते हैं। जब यह विचार उपस्थित हो जाता है तो कोई उपद्रव नहीं होना चाहिये। जो लोग कष्ट पाते हैं वही जगतमें मान और प्रतिष्ठाको पाते हैं और सुख भोगते हैं यथार्थ और सत्यको वही समझ सकते हैं। संसारमें सब प्रकारके पदार्थ हैं परन्तु उनके लिये विचारका होना आवश्यक है जब तक विचार न होवेगा उनके लाभसे वंचित रहेंगे। पहाड़ी लोग विच्छु बूटी को जानते हैं। विच्छु के काटनेसे पीड़ा होती है उस जड़ी में ही उसकी औषधि प्रस्तुत है। यह लोग इसको जानते हैं इस

लिये वह इसे मल लेते हैं जब उसके विषय में विचार न था कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे जिस प्रकार प्रकृतीने इस जड़ी की नींव में ही उसकी औषधि रखदी है इसीप्रकार दुःखकी नींवमें सुख है औषधि है अतः यदि विधि जानोगे तो सारे पदार्थ प्रस्तुत भी होंगे अन्यथा दुःख उठाओगे।

१२ जानने के योग्य पदार्थ—न्याय शास्त्रमें आया है कि परमात्माकी प्राप्ति और मोक्षका यही एक साधन है कि मनुष्य इन १२ पदार्थों से परिचित हो—

आत्मा शरीरेंद्रियार्थ बुद्धि मनः प्रवृति दोष प्रेत्यभाव फल दुःखापवर्गस्तु प्रमेयम॥

आत्मा, शरीर इन्द्रिय इन्हीं के विषय बुद्धि, मन, प्रवृति दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, तथा अपवर्ग यह १२ जानने योग्य पदार्थ हैं।

समाचार पत्रों में गत दिनों यह चर्चा चली कि ऋषि दयानन्द निर्भ्रान्त थे अथवा भ्रान्त। यह भूल दर्शनकारों की ओर ध्यान न देने से हुई है। गौतम ऋषि कहते हैं कि उस की मुक्ति में कुछ सन्देह नहीं जिस को पूर्ण और निश्चित ज्ञान होजावे। एक लड़के के लिये जितने शास्त्री की पुस्तकें देखी हैं परीक्षक १२ प्रश्न बनाती है। उनका उत्तर उस लड़के से मांगता है। यदि उस लड़केने १२ प्रश्नों का उत्तर भिन्न२ दे दिया तो चाहे पुस्तक में भ्रान्ति हो परन्तु उस लड़के को अनुत्तीर्ण करने का कोई कारण नहीं होसकता। अब यदि ह कहे कि मैं सब पुस्तकोंको निरभ्रान्त मानता और जानता हूं तो वह कह सकता। इसी प्रकार से वह योगी निर-

भ्रान्त हैं जो १२ प्रश्नों अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय इत्यादि का पूर्ण रीति से ठीक २ उत्तर दे सकता।

"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" जब चित्त की वृत्तिका निरोध होता है वह योग कहलाता है। उस समय द्रष्टा (परमात्मा और जीव) अपने ज्ञान और परमात्माके ज्ञानको पूर्ण रीतिसे जान लेता है। वृत्ति जब परमात्मा से तदाकार होती है उस समय ठहर जाती है बिना उसके नहीं ठहरती। समुद्रमें चलने वाले जहाज़ दिनमें चलते हैं दिनको तो उन को ज्ञान होता है परन्तु रात्रि के लिये उनके पास क़ुतुबनुमा होता है जो ध्रुवकी ओर होकर पथ दर्शाता है कुतुबनुमाकी सूई ध्रुवकी ओर होगी। यदि घुमाकर उसको हिलाओ तो यह हिलकर उसी ओर जाकर ठहरेगी अर्थात् ध्रुव की ओर निश्चल हो जावेगी अन्यथा चलायमान रहेगी। विज्ञान वाले कहेंगे कि यह कला इसी प्रकार बनाई है परन्तु योगी कहते हैं कि जब इसका सम्बन्धी ध्रुव निश्चल से है इसीलिये यह अचल है। इसी प्रकार चित्तकी वृत्ति है यदि साकारके कामों में वृत्तिको लगावें तो चूंकि यह अचलहै इसलिये वह नहीं ठहरती। यदि परमात्माकी ओर लगती है तो फिर वृत्ती ठहर जाती है परमात्माकी प्राप्ति होती है। प्रश्न यह है कि जब समाधी खुलने लगे तो तब क्या होगा समाधि में क्यों सम्बन्ध होता है और इसके बिना क्यों नहीं होता? व्यवहारमें इस-लिये नहीं होता कि सांसारिक पदार्थोंमें उसको स्थिरता नहीं होती है उसको एक दृष्टान्तसे स्पष्ट किया जाता है जब मैं अपने सन्मुख दर्पनको घुमाता हूं उसमें मुख दृष्टि नहीं

पड़ता । इसी प्रकार चंचल नदीमें दृष्टि नहीं ठहरती परन्तु जब योगसे समाधि में स्थिरता होती है तो उसमें वृत्ति ठहरती है व्यवहारमें नहीं ठहरती क्योंकि कई संकल्प इसको चलायमान रखते हैं । योगीको वृत्ति समाधिके पीछे कभी बुरी बातों में न लगगी इसलिये व्यवहारमें भी उसको भूल न होगी क्योंकि इसी प्रकार उसने अपनी अवस्था बनाई है एक पुरुषने दूसरे से कहा कि इस मकानकी प्रत्येक वस्तु निकाल दो, दीपक लाकर उसने मेज़ कुरसी आदि सब चीज निकाल दीं । मकानके स्वामी ने आकर देखा तो मकान खाली था परन्तु भूल यह है कि प्रकाश द्वारा उन वस्तुओं को निकाला है इसलिये प्रकाश यहां विद्यमान है आकाशको भी निकाल दो उस दशामें मकान शून्य होगा । इसलिये योगी कहते हैं कि चित्तकी वृत्तिका निरोध करो । अर्थात् उसमें कोई किसी वस्तुका प्रवेश न होने दो प्रत्येक वस्तु निकाल दो ।

जिस समय मनुष्य समाधिमें ममता अथवा स्वत्वको निकाल देता है और उसको पूर्ण ज्ञान होजाता है तो उसका नाम "सम्प्रज्ञान योग समाधि है । यह शक्ति कब आवेगी स्वामी जीमें क्यों थी ? आत्माके साथ शरीरका सम्बन्ध रखा, शरीरयदि अशुद्ध है और आत्मा संस्कृत है पिछले कर्मोंके कारण शरीर दुर्बल है और आत्मा सबल है तो आत्मा शरीर छोड़ देगा । यदि शरीर सबल है और पास धन भी हो परन्तु आत्मा असंस्कृत होवे तो शरीर दुराचारों ॰। जावेगा । इसी प्रकार यदि शरीर और आत्मा संस्कृत

अथवा दोनों दुर्बल हों तो परिणाम उनके अनुकूल होगा ऋषिमें दोनों गुण थे अर्थात् बलवान शरीर और बलवान आत्मा। दोनोंके मेलसे क्या काम कर दिखलाया? विचारनीय बात यह है कि दोनोंका कितना गूढ़ सम्बन्ध है। आत्मा और शरीरमें रथी और रथका सम्बन्ध है।

दीवालीके दिन सब सफाई करेंगे परन्तु रात्रिको द्यूत (जुआ) खेलेंगे। मकान साफ़ है परन्तु उसका वासी पापी। जिन लोगों को मकान और उसके निवासीका ज्ञान न हो वह उन्नति नहीं कर सकते। दुखदूर होकर सुख प्राप्त हो यह कैसे सम्भव होसकता है? परन्तु परमात्माका सुख कैसे प्राप्त होवे जिन बातोंके करनेसे आत्मिक बल निर्बल होता है उनको तत्काल छोड़ दो। भारतवर्षमें कौनसी त्रुटि अथवा निर्बलता है आर्य समाजने कौन २ बातें नहीं बताईं दोषोंको बतलाया और अच्छी बातोंको भी बतलाया। अफ़ीमीने अफ़ीम का स्वभाव डाला कष्ट भोगता है परन्तु उसको छोड़ता नहीं दुर्व्यसन में जकड़ा गया है। विद्याका काम है जान लेना और जता देना। प्रकाश में यदि सर्प पड़ा है तो बतला देगा कि रस्सी नहीं सर्प है। यदि देखने वालेमें बल है तो उसको पृथककर देगा। उसी प्रकार विद्याका काम है यह बतला देना कि कौनसी वस्तु गुणकारी और कौनसी अवगुण वाली? कौनसी लाभदायक और कौनसी हानिकारक? लाभदायक और हानिकारकके ग्रहणको विद्या आत्मिक बलके हवाले करती है। प्रति दिन देख रहे हैं कि सन्तानें निर्बलहो रही हैं जातिमें निर्बलता आरही है समाज और पुरुषोंमें प्रेम प्रीति नहीं है फिर भी रोगको नहीं छोड़ सकते क्यों? इसलिये कि

आत्मिक बल नहीं है। हम लड़ते जायेंगे और छोड़ेंगे नहीं। बाज़ार में पुरुष दूसरोंको लड़ते देख कर छुड़ा देता है और उपदेश करता है कि लड़नेमें दुष्टता आदि दोष आजाते हैं जब लड़ने वाले डांट बतलाते हैं और उसको गाली भी देते हैं तो वही लाठी लेकर उनके साथ लड़नेको तैयार हो जाता है। कहता कुछ है और कर्तव्य से दिखलाता कुछ है और इसका कारण स्पष्ट है कि उसमें स्वयं आत्मिक बल नहीं है उसमें भी आत्मिक दुर्बलता है जब तक आत्माकी सत्ता और बलको न समझोगे सफलता नहीं हो सकती और नाही संसारको कठिनायोंका सहन हो सकता है। गौतम ऋषिने आत्माके चिन्ह बतलाये हैं कि "सुख, दुःख राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न"। इच्छा है सुख की, द्वेष-दुःख से है। वेद में परमात्मासे प्रार्थना है कि जब तक हम संसार में रहें सुखी रहें। मनुष्य प्रयत्नसे सुख उपलब्ध कर सकता है और दुःख दूर कर सकता है। ज्ञान द्वारा लाभदायक और हानिकारक पदार्थोंका अन्वेषण और समझ हो सकती है। कोई पुरुष दुःखको नहीं चाहता परन्तु ज्ञान अल्पज्ञ है अतः प्रयत्न करनेसे भी परिणाम उल्टा हो जाताहै। मैं आपको एक दृष्टान्त देता हूं स्वामी जीसे उज्जैन में लोग पूछते हैं कि महाराज वेदोंका भाष्य उल्टा करते हो उन्होंने कहा कि हां उल्टे का उल्टा करता हूं, इसलिये जब बुद्धि उल्टीकी है तो उसका सेवन भी वैसा ही करो। समाजी लोगोंने अपने पूर्वजोंकी खोजकी और प्रशंसा भी की॥

एक समय दारोगा भैरव प्रसाद जी ईसाई होने लगे। हिन्दू उनके पास दौड़े गये और उनसे पूछा गया कि आप

ईसाई क्यों होने लगे हैं उन्होंने कहा मुझे हिंदुओंमें कोई मनुष्य ईसा की तुलनाका दृष्टिमें नहीं आता तुम अपने पूर्वजोंमें से इस जीवनका कोई बताओ ? हिंदुओं ने बतायाकि श्रीरामचंद्र जी हैं, परन्तु दारोगा जी कहते हैं कि वह अवतार हैं मनुष्यों में कोई दिखलाओ। यह सुन हिंदु बड़े कष्टमें पड़े निदान दारोगा जीके साम्हने हकीकत रायका दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया जिसको उसने स्वीकार किया। वह हकीकत जो एक लड़का था परन्तु धर्मकी अपेक्षा सिरको कटारके साम्हने झुका देता है और कहता है कि "जिस धर्मकी तलाश थी वह आज पा लिया है"। माता अपनी और स्त्रीकी दुःख भरी अवस्था सुनाती है और रुदन करके कहती है कि क्यों अपनी जान खोता है ? परन्तु हकीकत समझता है कि एक जानके जानेसे हज़ारों जानोंका स्वामी अर्थात् ईश्वर मिल जावेगा। आर्य्य समाजियोंने तहकीकात तो करदी परन्तु ज़िम्मेवारी न समझी जब तक ज्ञान और प्रयत्न ठीक न होगा तब तक परिणाम ठीक न निकलेगा। ज्ञान पूर्वक प्रयत्न करोगे तो लाभ उपलब्ध करोगे अन्यथा सारा प्रयत्न व्यर्थ और निष्फल हो जावेगा। पुरुष नहरमें कूदता है और पार जाना चाहता है नहर अपने जल प्रवाहकी ओर उसको लेजाती है और वह धारामें बहा चला जाता है। एक पुरुषने समझाया कि प्रयत्न तो ठीक है परन्तु ज्ञान ठीक नहीं सीधे और किनारे पर न जा तिर्छा तैर कर जा पार हो जावेगा। पहला प्रयत्न उलटे ज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। एक पुरुष लैम्प जलाना चाहता है वायु चल रही है। दियासलाई जलाता है परन्तु दियासलाई वायु वेगसे बुझ

जाती है इसी प्रकार आधी दियासलाईकी डब्बी व्यय हो जाती है। एक पुरुषने उपदेश किया कि मूर्ख ! वायु में किस प्रकार दियासलाई जलाता है वायुसे अलग होकर ओटमें जा। फिर उसने इसी प्रकार किया परिणाम यह निकला कि एक दियासलाईसे लैम्प जल गया। इसी प्रकार मनुष्यों का प्रयत्न तथा पुरुषार्थ सुमार्ग पर नहीं होता तो निष्फल जाता है। प्रयत्न तो ठीक है परन्तु सम्बन्ध ज्ञानसे नहीं है, मनुष्यको सोच विचार कर काम करना चाहिये, भारतवर्ष में कष्टों का प्रादुर्भाव इस लिये है कि विचार उल्टा हो गया है गया है इसका उदाहरण लीजियेः—एक पिताके घरमें एक लड़का था पुत्र मरने लगा पिताने पूछा पुत्र आज्ञा कर जाओ कि क्या करूं? मैं चाहता हूं कि तुम्हारा सन्मार्ग बना रहे। पुत्र ने कहा तुम न करोगे। पिता ने हठ किया। और कहा कि नहीं करूंगा। लड़के ने कहा कि जब मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊं मेरी भस्मसे अपने द्वार पर समाधि बना देना। पिता ने इसी प्रकार समाधि बना दी। अब नित्य प्रतिके दुःखका सामान मोल ले लिया। प्रति दिन उसको देखकर और स्मरण कर रोना आरंभ किया और निर्बल होता गया। इसी प्रकार भारतवासियोंने ब्रह्मचर्य्यको छोड़ा और अल्प आयुके विवाह की कुरीति प्रचलित करदी। लड़के मरने लगे और सारे गृहों में समाध बने हुए हैं इसका विचार नहीं किया कि यह सम्बंध ज्ञानपूर्वक है? और न अपनी सन्तानके दुःख दूर करनेका कोई उपाय सोचा है। एक देवी ब्राह्मणी थी परन्तु मुसलमान होगई। उसके मुसलमान होने का कारण आर्य्य समाजियोंने पूछा तो विदित हुआ कि उसने मुसलमान

होनेसे पूर्व समस्त हिंदुओंके आगे हाथ जोड़े उन को याचना की कि काम दो और रक्षा करो प्रथम तो किसीने घर रखने का साहस न किया और दूसरे यदि कोई रख भी लेता तो देवी ने कहा कि लोग रखने वाले पर और उस पर दुष्ट भावयुक्त सङ्केत करते हैं इनसब उपाधियों से बचनेके लिये वह इस मण्डलीसे पृथक होगई अब कहने लगी "हक्का हक्का हक्का—कुफ़र छोड़ दिखाया मक्का," यह भेद है इसलाम में। कौन तुम्हारी नित्य प्रति की धतकार को सहन करता रहे। क्रोड़ोंकी संख्यामें विधवाएं हैं क्या कोई उपाय सोचा है? इतने बी. ए. एम. ए. आर्य्य तथा हिंदुओंमें हैं क्या कभी कोई उपाय उनके दुःख निवारणका उपाय सोचा है? पैसोंका चिन्तन है परन्तु जातीकी निर्बलताका विचार नहीं, यदि इस प्रकार कर्त्तव्य रहा तो सब मर जाओगे। प्रसिद्ध है कि सबल के सब ही सहाई हुए दुर्बल का कोई सहाई नहीं। सज्जनों! लकड़ियोंके ढेरको आग लगे यदि वायु चले तो वह भी आग को ही सहायता देता है, परन्तु वही वायु दीपकको बुझा देता है इसमें भेद स्पष्ट है वह पहला सबल है दूसरा दुर्बल॥

आत्मिक बल की आवश्यकता—संसारमें निर्धन को मार है परन्तु निर्धन है कौन? आत्मिक बल की निर्बलता वाला। इस पर अकबर और बीरबल की कथाका स्मरण होता है—एक पुरुष ईंटें लेने जाता है, एक कूपके पास जाकर देखा तो कूप गहरा और दृढ़ था ईंटें न निकाल सका। फिर दूसरे कूप के निकट गया वहां ईंटें निकली हुई थीं वहां से उठा लाया। अकबर और बीरबल दोनों उस की अनु-

सन्धान और निश्चय करनेके लिये गये और देखा कि एक दशा में वह ईंटें न लासका दूसरी दशा में ले आया। पूछने पर बीरवलने कारण बतलाया कि पहले कूपसे ईंटें इसलिये न लासका कि उसमें परस्पर सम्बंध था दूसरे से लासका कि वहां निर्वलता थी सम्बंध नहीं है। मनुष्यके मुख में ३२ दान्त हैं और एक जिह्वा है जब एक दान्त और दाढ़ हिलने लग जाते हैं तो जिह्वा उसी ओर ही जाती है जब तक उस दुर्वल दान्त को निकाल नहीं लेती आराम नहीं करती इसी प्रकार यदि आत्मिक बल को न बढ़ाओगे तो मरजाओगे परस्पर लड़ते मरते रहोगे। लड़नेमें तो भारतवासी सिंह समान हैं। यदि सन्मुख कोई निर्वल आजावे तो उसी समय बलवान बन जाते हैं और दुर्बलको दुःख देते हैं और उस पर अत्याचार करते हैं परन्तु यदि कोई पराक्रमी बलिष्ट पुरुष साम्हने आ जावे तो झट दबक कर खिसक जाते हैं सज्जनो! आत्मिक बल वाले निर्वलोंको सहायता करो और यह बात स्मरण रखो—

यदि अंधे के आगे कूप होगा।
अगर चुपके रहोगे पाप होगा॥

यदि एक पुरुष आंखों वाला दूसरे को सहायता नहीं करता तो उसके जीवन पर धिक्कार है। मनुस्मृति में स्पष्ट आया है कि जो मनुष्य जिस इन्द्रियका उल्टा प्रयोग करता है दूसरे जन्ममें वही इन्द्रिय उससे छीन ली जाती है। मनुष्यने चक्षुका उल्टा प्रयोग किया अगले जन्ममें उसको अंधा बना दिया। अथवा यदि दुराचार करने लगे तो पशु योनी में फेंक दिया। इस स्थान पर भी तो यही अवस्था है कि यदि एक

पुरुष बंदूक का लाइसंस रखते हुए मनुष्यों पर चांदमारी करने लग जावे तो बंदूक उससे छीनी जाती है। भाई! उपयोग उल्टा न करो आत्मिक बलको बढ़ाओ इसीमें सारी उन्नतिका भेद है, फिर यदि हिमालय जैसी दृढ़ और कड़ी आपत्तियां भी आवेंगी तो उनको सुख में परिवर्तित कर सकोगे। छोटी लड़कियों के विवाह और विधवाओंका क्या उपाय सोचा है यदि इसी प्रकार प्रमादमें पड़े रहोगे तो आप का देश कभी नहीं उठ सकता॥

बृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्य में श्री शंकराचार्यजी लिखते हैं किमनुष्यको एक काम करनेके पीछे और कोई नहीं रहता अर्थात् ब्रह्मज्ञानके पीछे, और एक कामसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं अर्थात् अश्वमेध यज्ञ। अश्वमेध यज्ञ घोड़े का यज्ञ अथवा अश्वबध नहीं है प्रत्युत एक न्याय शील राजा जब जानता है कि प्रजा पीड़ित है तो दूसरे [राज] के अन्याय से छुड़ाता है उसका नाम अश्वमेध है अब भूल से लोग अश्व और हस्ति की आहुति देने लगे। इसी प्रकार से बतलाया कि एक से बढ़कर कोई पाप नहीं है अर्थात् गर्भ पात, इसका कारण स्पष्ट है कि कोई किसी को पाप की शत्रुता अथवा धन के लोभ से घात करता है परन्तु माता के गर्भ वाले ने क्या अपराध किया है? जब जाति ही इसमें दुःखित है तो क्या इसका प्रयत्न न करें और यदि करें तो देखें कि क्या यह प्रयत्न ज्ञान पूर्वक है। सज्जन आत्मिक बल वहां है जहां पर ज्ञान पूर्वक प्रयत्न है इसको एक दृष्टांत से स्पष्ट किया जाता है बन में एक जलाशयमें जल भरा हुआ है एक पुरुष उसको जल

रहित करना चाहता है उसको पांच नालीयां जाती हैं वह पुरुष उसको एक वर्तन से जल शून्य करना चाहता है जितना वह खाली करता है उतना ही भर जाता है । एक विचारशील पुरुष ने इसको ऐसा करते देख कर बतलाया कि यदि १५ दिन भी लगे रहोगे तो यह कुण्ड खाली न होगा क्योंकि तेरा यह कर्म्म अज्ञान युक्त है उसने बतलाया कि नालीयों का मुख दूसरी ओर कर दो तो छः अथवा ७ घण्टे में यह कुण्ड खाली हो जावेगा । अब इस दशामें पहला प्रयत्न ज्ञान शून्य था परन्तु दूसरा ज्ञानपूर्वक । इसी प्रकार मनुष्योंका हाल है आज कल श्राद्धोंके दिन हैं । श्राद्ध से अब कितनी हानी हुई है इसके तत्वका बोध होजाता तो लाभ था अब इसके विपरीत हानि हो रही है । श्राद्ध करनेसे विद्या बल, धन, परस्पर प्रेम, सुन्दरता सब कुछ इसमें था किन्तु उलट दिया सब कुछ जाता रहा । आप जानते हैं कि अंग्रेज़ीकी शिक्षा यहां किस प्रकार बढ़ी ? कलक्टर साहिबनें एक ऐन्ट्रंस पास को बुलाया सभा में सब विद्यमान थे । उस लड़केका मुख आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा है कलक्टर साहबने सबके सन्मुख उसके कण्ठ में पुष्पमाला डाली और पारितोषक दिया उसे देख कर शेष बालकोंके मनमें उत्साह उत्पन्न हुआ कि अगामी वर्ष हम भी ऐसा ही करेंगे और पारितोषक उपलब्ध करेंगे इस प्रकार पाठमें परिश्रम होता है जब उद्देश्यकी पूर्ति होती है तब मान होता है । इसी प्रकार श्राद्ध पिता, दादा प्रपिता,महां माता प्रपितामहा के होते हैं । मनुजी कहते हैं कि २४ वर्ष पर्य्यन्त जो ब्रह्मचारी गुरुकुल में विद्या अध्यन करके

आता है उसको "वसुपिता" कहते हैं, ३६ वर्ष तक पठित को "रुद्र" और ४४ वर्षके ब्रह्मचारी की "आदित्य' संज्ञा होती है। आज कलके गुरुकुल भी इसी प्रणालीके आदर्श की ओर चले हैं परन्तु आप जानते हैं कि भले कार्य्यों में अनेक प्रकारकी बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे आम्र के परिपक्क होने पर्यन्त कितने कष्ट और उपद्रव होते हैं गुरुकुलमें यह तीन कार्य्य होते हैं। (१) शारीरिक बल वर्धन करना (२) विद्या प्राप्ति (३) तपस्वी होना परन्तु आज हम लोगोंकी दशा अन्यथा है उस समय अध्यापक धन लेकर कार्य नहीं करते थे परन्तु वानप्रस्थी वह कार्य्य करते थे गृहस्थ आश्रम को पूर्ण करके जब कि पुत्रके गृह पुत्र अर्थात् पौत्र उत्पन्न हो जाता था तो वह मनुष्य वानप्रस्थ में चला जाता था उस समय वह कहता था कि हे पुत्र! तुझे मैंने बनाया अब अपने पुत्र को तू स्वयं योग्य बना और अपना कर्तव्य पालन कर। इसीप्रकार लोग वानप्रस्थी होकर गुरुकुलों में गृहस्थ आश्रमका पालन कर और अनुभव उपार्जन करके चले जाते थे। और ब्रह्मचारियों का शिक्षण करते थे आज कलके उपाध्यायों की यह दशा नहीं है। अब शुद्धाचरण के केवल व्याख्यानों की आवश्यकता नहीं हैं प्रत्युत कर दिखलाने की है एक वृद्ध पुरुष आम के पेड़ लगा रहा था एक युवक ने देख कर कहा कि 'बाबा क्या कर रहे हो? तुम बूढ़े हो यह कब फलें और फूलेंगे और इसे कब खाओगे? वृद्ध ने उत्तर दिया कि मुझे मेरा उद्देश बल दे रहा है और काम करनेको उत्तेजना कर रहा है कि अन्य लोगों के लगाये

रहित कर्मने खाये थे मेरे लगाये आने वाली संतान खायेगी। उसइसी प्रकार एक फ़ारसी के कवि ने कहा है:—

"भोजन जीवन के लिये न कि जीवन भोजनके लिये"

यह थी जीवन शृंखला जो प्राचीन समयमें प्रचलित थी और यह था उद्देश्य, जिसके आधार पर वानप्रस्थी गुरुकुल में कार्य किया करते थे। अब २४ वर्ष के मुख्याध्यापक हैं तो २२ वर्ष के उन के शिष्य हैं। आज प्रथा ही और चल रही है। प्राचीन कालमें संज्ञा विद्या गुण आदिके आधार पर होती थी केवल आयु तथा संतानके होने पर निर्भर न थी। भीष्मपितामहा ३९ वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहा और विवाह नहीं कराया फिर भी सारे संसार का पितामहा कहलाया। भारत निवासियोंके लिये आवश्यकता यही है कि पहिले तो माता पिता बनें और फिर सन्तान उत्पन्न करनेके अधिकारी बन कर माता पिता कहलायें। अब माता पिताके योग्य बननेके बिनाही सन्तान उत्पन्न की जा रही है। सज्जनो! युवावस्था में तीन वस्तु काम देती है—बल, सन्तान, धन। यदि कन्याकी आयु १६ वर्ष और वर २५ वर्षका और दोनों बलयुक्त हों तब युवाकालकी सन्तान उत्पन्न होती है और उनमें बल और पराक्रम भी होता है। भला १९ वर्ष का लड़का सन्तान उत्पन्न करे तो यह सन्तान बलवान तथा पराक्रमी कैसे हो सकती है अभी इस लड़के को आठ वर्ष और पिता बनने के लिये चाहियें।

यह तो ऐसा ही है जैसे एक पुरुष कहे कि पहले मुझे मल्ल बना लो फिर मैं मल्ल स्थानमें जाऊंगा। पञ्जाबीका एक

कथन है कि "यदि पिताके पुत्र हो और माताका दुग्ध पान किया है तो आजाओ मैदानमें" । सन्तान सिंह की न्याईं उत्पन्न करो शूरवीर बनाओ अन्यथा यदि निर्बल और बल हीन १०—२० पुत्र उत्पन्न कर दिये तो किस काम के ? सिंह एक दो भी हों तो पर्याप्त हैं और शोभा देने वाले हैं । भला ऐसी सन्तानसे क्या लाभ कि बिल्ली आवे तो कबूतर की न्याईं आंखें बन्द कर लें ? विपत्ति बल उत्पादक है । एक पराक्रमी पुरुष बन में जाकर भी धन पास हो और सहन की शक्ति भी हो तो धन तथा अपनी रक्षा कर सकता है परन्तु बल हीन कुछ नहीं कर सकता, मिलान करते समय, निर्बल सिद्ध होगा, और उत्साह को त्याग देगा । जिस मन में सङ्कल्प उत्पन्न हो आत्मिक और शारीरिक बल पैदा होते हैं। ज्ञान पूर्वक विचार न होने से अब श्राद्ध उल्टे हो गये हैं। वास्तव में श्राद्ध है श्रद्धापूर्वक सेवा करनेका नाम । इससे विद्या, बल बुद्धि तथा विद्वानोंकी वृद्धि होती है । "विद्या तपो धना ब्राह्मणा" ब्राह्मणोंका काम विद्या और तप था । धन प्राप्ति उनका काम न था । उनकी रक्षा के लिये क्षत्रिय तथा वैश्य थे, पितर लोग और ब्राह्मण लोग चतुर्मासा में ठहर जाया करते थे क्योंकि यात्राके कष्ट से विश्राम लेकर आगामी के कार्य्यके लिये तैयार होते थे, वर्षा के कारण कीट पतंग आदि जन्तु उत्पन्न हो जाते थे और यात्रा में कष्ट भी होता था अतः इस ऋतुमें लोगोंको अच्छे शुभ कार्य्यके करने और अशुभके हटानेमें उपदेश देनेके लिये ठहर जाया करते थे इसके साथ ही प्रेम और प्रीतिके सञ्चार करने वाले

होते थे। आज भी यह दशा वर्तमान है। जब कभी कोई उच्च अधिकारी अधिकार परिवर्तन पर जाता है उसके इष्ट मित्र तथा सम्बंधी गण उसके जाते समय कुछ दिनोंके लिये ठहरा लेते और उसको भोज देकर प्रेम और प्रीति को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार वह पितर निर्भय होकर उपदेश सुनाते थे। १५ दिवस पर्यन्त यही चर्चा हुआ करती थी। अब काम विपरीत हो गया और प्रचलित हो गया मृतक का श्राद्ध। भला पिता, पितामह, प्रपितामहा का तो श्राद्ध किया जाता है परन्तु लड़के और लड़कीयोंका जो मृत्युको प्राप्त हो जांव उन का क्यों नहीं श्राद्ध किया जाता? वेदों में इसको पितृ यज्ञ कहते थे। आर्य्य समाज भी पितरों के लिये ही कहती है किन्तु मृतकों के लिये नहीं प्रत्युत ऐसे पितरोंके लिये जिनका वर्णन ऊपर किया गया है भला सनातनी भाईयों से कोई पूछे कि पिता आत्मा है या शरीर, यदि वह शरीर है तो वह जल कर भस्म होगया और यदि आत्मा है तो आत्मा जो शरीर धारण करता है वह इसी भांति का शरीर लिंग धारण करता है तो फिर प्रश्न यह है कि श्राद्ध किसका किया गया? भाव उल्टा हो गया और मृतकोंके श्राद्ध चल पड़े। हमसे तो लंका द्वीपवाले ही अच्छे हैं। मैंने लंका में जाकर पूछा कि छः मास कुम्भकरण सोया करता था यह कैसे सम्भव हो सकता है? तो मुझे इसका लेखा करके बतलाया गया कि वर्ष में ६ मास रात्री और ६ मास दिन होता है तो इसके हिसाब कुम्भ करण ६ मास ही सोया करता था इसमें असम्भव बात क्या है? सारांश यह है कि कई बातों के अर्थों का अनर्थ हो गया

है। जिस प्रकार कोई अध्यापक लड़कोंको आज्ञा दे कि बोलो मत पढ़ो तो कोई इससे समझ लेवे कि बोलो-मत पढ़ो। इसी प्रकार श्राद्ध के अर्थ के अनर्थ कर लिये गये हैं।

भाई आत्मिक बल वर्धन करो। शारीरिक बल बढ़ाओ बुरी बातों को तत्काल छोड़ो। विपत्ति के पश्चात सम्पत्ति आया करती है विद्वान विना साधनके, ग्रह विना द्वार, तथा वृक्ष विना फलकी न्याईं हैं। पहले आप सुना करें। सुन कर विचारें फिर उस पर साधन करें ऋषि इतना काम न कर सकते थे। शरीर और आत्मा दोनों बलवान करो। युवको? अपने कर्त्तव्यको विचारो अधिकारोंके ढेर बढ़ गये हैं। दुर्गुण दुर्व्यसनोंका परित्याग करो। शुभ विचारोंको ग्रहण करो तो सुख प्राप्त करोगे और दुःख से बचोगे।

धर्म का आश्रय लो यदि जीवन चाहते हो।

भद्र पुरुषो और माताओ! बार २ हम कहते हैं कि हमारे भाई ईसाई और मुसलमान होरहे हैं परन्तु हम उनकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते और करें भी कैसे? जो स्वयं सुरक्षित नहीं वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा जो स्वयं सो रहा हो वह दूसरोंको कैसे जगावे? जिसने अपना सुधार तो किया नहीं परन्तु दूसरोंके सुधारका यत्न करता है इसका यत्न कैसे सफल हो सकता है? इसका नाम अन्धपरम्परा है।

लोग कहते हैं कि उपदेश का अधिकार सबको है परन्तु शास्त्र की कुछ और ही सम्मति है। शास्त्र लिखते हैं "जीवन

मुक्त निश्चः उपदेशः" अर्थात उपदेश का अधिकार जीवन मुक्त पुरुष को ही है। जो स्वयमेव मार्ग भूल गया है वह दूसरों के पथका प्रदर्शक नहीं हो सकता कथा—एक पंडित बड़े प्रभाविक शब्दोंमें मद्यपान के विरुद्ध उपदेश करता था एक पुरुष ने उसके उपदेशसे प्रभावित होकर मद्यपान त्याग दी। इसके २–३ दिन पश्चात वह पुरुष उस पंडितको धन्यवाद देनेके लिये उसके गृह पर गया। जब पहुंचा तो क्या देखता है कि वह पंडित स्वयं मद्यका सेवन कर रहा है। यह देख वह चकित हो गया कि क्या यह वही पंडित है जिसकी युक्तियों को सुनकर मैंने मद्यका परित्याग कर दिया था? उसके उपदेश का विपरीत प्रभाव पड़ा अब उसको कितना उपदेश करो वह नहीं मानेगा। इसी लिये कहा गया है. यदि तुमने किसीसे कोई दुष्ट स्वाभावका त्याग कराना हो तो पहिले स्वयं उस दुष्ट स्वाभाव का परित्याग कर दो, मादर्शनी घोड़े संसारको केवल दिखाव मात्र होते हैं परन्तु क्या किसी ने कागज़ के बने घोड़े को काम करते देखा? संसारमें जीवनने जीवन डाला है। जिनका कथन कुछ और है मन्तव्य कुछ और कर्तव्य कुछ और उन्होंने संसारमें कभी कोई काम नहीं किया।

किसी आर्य्य समाजीसे पूछा जाता है कि क्यों जी आप कौन हैं? उत्तर मिलता है कि आर्य्य समाजी विचार रखता हूं। भाई! केवल विचार वाले आर्य्य समाजीकी आवश्यकतानहीं यदि कभी थी तो वह समय व्यतीत होचुका। अब तो कर्त्तव्य परायण आर्य्योंकी आवश्यकता है इसलिये यदि आपके मन में संसार सुधारकी चिन्ता है तो पहले आप सुधरो।

अन्य लोग तुम्हारे कर्त्तव्योंका अवलोकन कर सुधर जावेंगे अब प्रश्न यह है कि अपना सुधार कैसे करें ?

आप प्रतिदिन देखते हैं कि यदि भोजनमें ज़रासा बाल आजावे तो भोजन खाया नहीं जासकता, परन्तु शिर पर असंख्य बाल हैं। कफ और रुधिरको देखकर अत्यन्त घृणा होती है परन्तु शरीरके भीतर यह सब कुछ विद्यमान है। शरीरके समस्त अङ्गों से मैल निकलता है फिर कौनसी वस्तु इसमें है जिससे यह पवित्र समझा जाता है। शास्त्र बतलाते हैं कि आत्माका संयोग ही शरीरकी पवित्रता का कारण है। यदि अन्तःकरणको शुद्ध रक्खा जावे तो शरीर और आत्मा दोनों शुद्ध रह सकते हैं इस लिये सबसे बड़ी आवश्यकता अन्तःकरणके मार्जनकी हैं अन्तःकरणकी शुद्धि कैसे हो? अन्तः करणको शुद्ध करने वाली सबसे पहली शक्ति काम है। इस शक्तिका सुधार करनेके लिये शास्त्र कहते हैं अशुभ गणानाम इच्छा कामः अशुभ सङ्कल्प यदि दब गये तो आपने कामको जीत लिया। अशुभ गुणोंकी इच्छाका नाम ही काम है अछूतों का आत्मा क्यों दब गया इसलिये कि आपने उनका तिरस्कार करके उनमें शुभ इच्छा उत्पन्न होनेकी शक्ति ही नहीं रहने दी। इसलिये जीवन सुधारनेके लिये सबसे पहला साधन शुभ इच्छा पैदा करना है।

दुष्कर्म्मों से घृणा सच्चा 'क्रोध' है। अपने भीतर ऐसा बल पैदा करना जिससे कोई दुष्ट भाव अन्तःकरणको मलीन न कर सके।

लोभ—लोभका यह आशय नहीं जो हमने समझ रक्खा है कि जिस प्रकार भी बने धन मिल जावे लेलेना। शास्त्रकार बतलाते हैं :—आत्म रक्षाणाम् सदैव लोभः ऐसी वस्तु का लोभ करना जिससे आत्मा की रक्षा हो परमात्माने धन दिया परन्तु ऐसे कृपण बने कि एक कौड़ी भी भले कामोंमें व्यय नहीं करते। आत्माका कल्याण कैसे हो? हमारी अवस्था आज कल बहुत पतित हो रही है। धर्म्मके कामोंमें समय इसलिये नहीं देते कि यहांसे कुछ लाभ प्राप्त होता दिखलाई नहीं देता। और धन इसलिये नहीं देते कि लोभ है और यदि किसीके अत्यन्त प्रेरणा करने पर एक रुपया दे भी दिया तो फिर समाचार पत्रोंमें देखते हैं कि हमारा नाम छपा है या नहीं।

एक धनवान पुरुष का वर्णन है कि वह प्रातः उठकर अपने आगे दुवन्नियों और रुपयों का ढेर लगा लेता था। जो कोई उससे मांगता वह आंख बंदकर उसकी इच्छानुकूल एक मुट्ठी भरकर धन उसे देदेता एक पुरुषने छलसे कईबार उस से धन मांगा और उसनें विना संकोचके देदिया। जब वह लेचुका तो उसके मनमें बड़ी लज्जा आई और उसने सारा धन उस धनी को देदिया और हाथ जोड़कर पूछा कि आप का गुरु कौन है जिसने आपको इस उदारता से दान करना सिखलाया है? धनीने उत्तर दिया—

'देने वाला और है जो देता है दिन रैन'

हमारे पूर्वज गुप्त दान करना पुण्य समझते थे परन्तु हमारा देश पश्चिमी तरङ्गमें बहकर दानको भी अपने व्यवसाय की ख्याति का कारण समझता है।

कांम, क्रोध, लोभको जीत लिया परन्तु यदि आत्मामें सत्य नहीं तब भी कुछ न बनेगा "सत्य" क्या है? शास्त्र बतलोते हैं "आत्मानम सत्यम रक्षेत्" जिससे आत्माकी रक्षा होती है वह सत्य है। आत्माकी रक्षा तो होती है सत्यसे परंच हम चाहते हैं कि दिन रात ठग विद्या और अधर्म्म युक्त कार्य्योंके करने पर भी धर्मात्मा कहलायें और हमारी आत्मा का कल्याण हो। यह कदापि न होगा। पहले इन दोषोंको दूर करो इनको दूर करनेके पश्चात जब तुम्हारा जीवन शुद्ध हो गया तो वह भूगर्भ अग्निकी न्याई तुम्हें विना कार्य्य न बैठने देगा।

इस लिये पहले आत्माकी रक्षा करो आत्माके हनन होनेसे न पुत्र रक्षा करेंगे न धन रक्षा कर सकेगा।

मोहः—क्या है? "मोहस्तु अविद्या" अविद्या ही मोह है। जो अविद्याका आश्रय लेते हैं उनका कुछ नहीं बनता एक पुरुष वेगवान वायुमें बैठकर लैम्प जलाना चाहता है, घण्टों यत्न करने पर भी लैम्प नहीं जलता। जूंही एक विद्वान आया और उसने युक्ति बतलाई कि भाई दीवारकी ओटमें जाकर लैम्प जलाओ। उसने ऐसा ही किया और उसी समय लैम्प प्रकाशमान हो गया इसी लिये कहा गया है किः—

"विना विचारे जो करे सो पाछे पछताय"

अविद्याका कारण दुःख है। वेदान्त शास्त्र कहता है कि लोग थोड़ेसे ज्ञान और सत्संगसे आत्माका कल्याण चाहते हैं परन्तु हो कैसे? शरीरकी ५ नालियों से अज्ञान और अविद्या

का प्रवेश होता है। इस लिये अविद्या और उसके संस्कारोंको दूर करनेका यत्न करो।

अहंकार—मैं बड़ा हूं, मुझसे बढ़कर कोई नहीं यह अहंकार है। शास्त्र कहता है "आत्मनि आत्म अभिमानः"

एक माता ने अपने पुत्रको अपने चर्खे का तकला दिया और कहा कि इसका टेढ़ापन निकलवा लाओ।

वह गया और लुहारने चोट लगा कर उसका टेढ़ापन निकाल दिया।

अब वह लुहारसे बल (टेढ़ापन) मांगता है। लुहार आश्चर्य में है कि यह क्या मांगता है? निदान वह बालक माताके पास गया, माताने उसे समझाया कि पुत्र! तकले में बल पड़ गया था लुहारने चोट लगा कर सीधाकर दिया।

इसी प्रकार हमारी आत्मामें अहङ्कारसे बल पड़ गया है आवश्यकता है कि इसको चोट लगाकर सीधा किया जांव परन्तु हम क्या करते हैं? तर्कके रणमें हमने संसारको जीत लिया है परन्तु कर्त्तव्य परायण नहीं।

एक महात्मा राम कृष्ण हुए हैं जिन के स्मार्क में उन का मिशन अब तक है। ऋषि जीवनसे उनकी क्या तुलना हो सकती है। परन्तु मृत्यु के समय अपने शिष्यों को बुला कर कहा कि मेरे पीछे मेरे मिशनको जारी रखना। उन्हीं के शिष्य विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने अमरीका आदि देशोंमें वह काम कर दिखाया कि संसार चकित हो रहा है।

भद्र पुरुषो! विचारो कि हम दुष्टभावयुक्त पुरुषों ने अपने आचार्य्यकी आज्ञाका पालन कहां तक किया है? हम

तो घरसे निकलना ही नहीं जानते । परन्तु बाहर निकले कौन ? गृहस्थमें रहते हुए बाल बच्चोंकी ममता नहीं छोड़ती सन्यासी बनना नहीं क्योंकि मन में यह अशुद्ध भाव बैठ गया है कि वृद्ध होकर सन्यास ग्रहण करेंगे भला वृद्ध होकर सन्यास ग्रहण करने का क्या लाभ ? जब कि समस्त इन्द्रियां शिथिल हो जावेगी । उस समय क्या काम कर सकोगे ? बात यह है कि जिस पुरुष में दुष्टभाव हो वह बहाने बहुत किया करता है एक दिन ईसाइयों की मुक्तिसेना [सालवेशन आरमी] के कुछ पुरुष मुझे मिले । मैंने उन से पूछा कि आप ने सन्यास क्यों लिया ? उन्हों ने कहा कि ईसा ने इंजील में लिखा है कि " मैं पिता को पुत्र से अलग करने आया हूं, मिलाने नहीं " अब इसपर विचार करो कि ईसाई लोग तो सन्यासको धारण करें, परन्तु आर्य्य पुरुष सन्यासका नाम न लें। स्मरण रक्खो कि जब तक तुममेंसे सन्यासी न निकलेंगे तुम्हारे धर्म्मका प्रचार न होगा। क्योंकि सन्यासियों के विना और कोई सीधी२ और खरी २ बातें सुना नहीं सकता । तुम संसारको उच्च और सच्चे विचार दो संसार तुम्हारे चरणों में गिरेगा। परन्तु करे कौन ? हम तो जगत व्यवहार में फंसे हुए हैं । हमें राज्य तथा बिरादरी का भय है परन्तु परमात्मा का नहीं ॥

उचित तो यह था कि पहला स्थान परमात्मा और धर्म्म के भयको देते परन्तु हमने उसका तिरस्कार किया। जिसने धर्म्मका निरादर किया उसका कभी सत्कार नहीं हो सकता। भीतरकी निर्बलताके लिये बाहरकी दृढ़ता कुछ नहीं कर सकती । जिस लकड़ीको अंदर से घुन लगा हुआ हो

उसे बाहिर का पालश कितनी देर तक स्थिर रख सकेगा इस लिये सबसे पूर्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार पर विजय प्राप्त करके आत्माको दृढ़ करो । जब आत्मा बल युक्त हो गया तो सब कार्य्योंमें हमें सफलता प्राप्त होगी ॥

हमारे रोगोंकी जांच करके ऋषि दयानन्दने वैदिक धर्म्म रूपी औषधि-पत्र हमारे हाथमें दिया, परन्तु हम ऐसे दुर्भाग्य निकले कि वह औषधि-पत्र ही चाट गये । अब रोग की निवृत्ति हो तो किस प्रकार ? डिप्टी कमिश्नर बुलायें तो रोग ग्रस्त हुए भी खाटसे उठ कर उसके पास दौड़े जावेंगे, परन्तु समाजके साप्ताहिक अधिवेशनमें जाने के लिये बहाने ही सूझते हैं, आज हमें जुकाम होगया आज गृह पर कुछ कार्य्य हो गया, डिप्टी कमिश्नर और बिरादरीका इतना भय परन्तु आर्य्य समाज जो धर्म्म सभा है उसका इतना भी भय नहीं । फिर धर्म्म का प्रचार करे तो कौन ? वास्तव में बात यह है कि ऋषिके मिशनको पूर्ण करनेके लिये इस समय किसी तेजस्वीकी आवश्यकता है। हम जैसे संसार भोगी पुरुषोंसे जिन्हों ने रुपये जैसी निकृष्ट वस्तु से धर्म्मको गिरा दिया है वैदिक धर्म्मका प्रचार न हो सकेगा। यदि हम में धर्म्म प्रचार की कुछ अभिलाषा है तो आज से यह प्रण कर लें कि प्राण जायें तो धर्म्म पर, जायदाद जावे तो धर्म्म अर्थ, सन्तान चली जावे। परन्तु धर्म्म न जावे । जिस दिन धर्म्म यह समझ लेगा कि मेरा आदर प्राणों और जायदादसे अधिक किया जाता है उसी दिन धर्म्म तुम्हारी रक्षा करेगा और तुम सारे संसारमें वैदिक धर्म्मका प्रचार करनेके योग्य हो सकोगे ॥

वैदिक शिक्षा ।

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्नआसुव॥
यजु० अ० ३० ३॥

इस मंत्र में बतलाया है कि हे ईश्वर न्यायकारी दयालु सारे दुर्गुण हमसे दूर रहें और सत्य मार्ग हमको प्राप्त हो। पहला पद निषेध दूसरा विधि है। इससे प्रगट होता है कि जीवकी मुक्ति तथा प्रवृत्ति के दो मार्ग हैं। एक सत्य दूसरा असत्य। मनुष्य जितना सत्य मार्गमें प्रवृत्त होता है उतना ही असत्य मार्गसे दूर रहता है परन्तु जो जितना असत्य मार्ग की ओर चलता है सत्य मार्ग से उतना ही दूर होता जाता है और उसका फल दुःख है।

एक कवि का वचन है:—हे संसारी मनुष्यो यदि तुम बुरे काम करते हुए यह चाहते हो कि इसका फल दुःख न हो यह हो नहीं सकता तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में छिप रहो समुद्र के निकट जा रहो वनमें भाग जाओ परन्तु उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा इससे कभी भी नहीं बच सकते। यदि तुम्हारा विचार है कि देखो संसारमें अमुक मनुष्य बुरे ही बुरे काम करता है परन्तु सुखी है धन भी है स्त्री, पुत्र आदि सब ऐश्वर्य्य में हैं, यह भूल है। यह फल तो उस के पूर्व शुभ कर्म्मोंका है जिस समय वह पूर्व जन्मके मिले हुए शुभ कर्म्मोंका फल पा चुकेगा तो इन सब कर्म्मोंका फल अवश्य भोगेगा॥

जो तुम कहो कि देखो एक पुरुषको सर्प काटता है वह तत्काल मृत्युको प्राप्त हो जाता है। परन्तु दूसरेको पागल कुत्ता

काटता है संभव है कि वर्ष दो वर्ष ४ वर्ष में कुत्तकी न्याईं भौंकने लगे और मर जावे इसी प्रकार कर्म्मोंका फल तब ही मिलता है जब उसकी सामग्री एकत्र हो जाती है । नवयुक, वृद्ध, बालक, माता, पिता सब ही जानते हैं कि यह काम बुरे हैं परन्तु इनमें फिर क्यों प्रवृत्त होते हैं ? और शुभ कर्म्मोंके करनेमें प्रवृत्त नहीं होते हैं ।

एक वेद मंत्रमें बतलाया है कि ईश्वर ! मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो, अशुभ वासनाओंसे दूर रहे । इससे प्रगट हुआ कि यह मन द्वार का द्वीप (दीवा) है जिस से बाहिर और भीतर प्रकाश होता है । इसी प्रकार जीव और प्रकृति के मध्य में यह मन रूपी दीप प्रकाशित है और जो योगी महात्मा होते हैं इसी मनकी शुद्धताई से होते हैं । मनकी शक्ति क्या है इसका नाम अन्तःकरण अथवा अंतनिष्करण है । यह चार प्रकार का है । एक तो 'मन' जिससे संकल्प विकल्प हो दूसरे 'बुद्धि' जिससे मनुष्य विचार करता है । तीसरे 'अहंकार' जिससे अभिमान होता है । चौथे 'चित्त' जिससे पूर्वका चिन्तन हो । जैसे एक पुरुषने एकका अंक लिखा उसके दाहनी ओर एक बिंदु दे दिया तो १० हो गये दो बिन्दु दे दिये १०० होगये । इसी प्रकार मन अथवा अन्तः करण चार प्रकार का है । अर्थात् उपाधि से इसके ४ भेद हो जाते हैं जैसे एक पुरुष है उसका पुत्र उसको पिता कहता है स्त्री पति कहती है पिता उसको पुत्र कहता है। प्यारो विचारो किसी कवि ने कहा है:—

मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।
पारब्रह्म को पाईये मन ही की प्रतीत ॥

मन से ही मनुष्य मोक्ष पदको प्राप्त होता है। जिन मुसलमानोंके हृदय में वेद की शिक्षा घर कर गई अथवा जिन तक वेदकी शिक्षा पहुंची वह भी मग्न होकर बोल उठे॥

दिल वदस्त आवुर्द कि हज्जे अकबर अस्त।
अज़ हज़ारां क़अवा यक़ दिल वेहतर अस्त॥

अर्थ-सब से महान दिल है उसको कावू में ला। यदि तुम एक मनको वश में करलो तो हज़ार क़अबा से वढ़ कर है। जिसके वश में मन है वह विषयी अर्थात् कामी, लोभी मोही नहीं कारण यह है कि मनकी अनुपस्थितिमें इन्द्रियां अपना कार्य नहीं कर सकतीं। देखो जिसकी श्रोत्र इन्द्रीके साथ मन का सम्बन्ध है वह मेरी बातको सुनता है। जिस का मन घोड़ गाड़ी की स्वच्छता में लगा हुआ है नहीं सुनता। बहुधा लोग कह देते हैं भाई मेरा मन दूसरी ओर था मैंने आपकी बात नहीं सुनी। अतः वेदने यह प्रार्थना करने की आज्ञा दी है कि मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो यदि तुम्हारा मन पवित्र हो तो जो यह कहता है कि आर्य्य संस्था क्यों नहीं वनती? यह बात जाती रहे और आर्य्य संस्था सरलतासे वन जावे।

विचार करो कि यह मन सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणके चक्रोंमें पड़ा हुआ है इसको इन चक्रोंसे पृथक करो। आप कहेंगे यह कैसे जाना जावे कि हमारे ऊपर रजोगुण अथवा तमोगुण का प्रभाव है। प्यारो जिस समय यह विचार उत्पन्न हो कि ४) अमुक धर्म्म के कार्यमें देने हैं दूसरा कार्य रोक कर देदें उस समय समझो कि सतोगुण का प्रभाव है।

यह विचार हो कि चलो किसी का धन हर लावें काटता है सुख से खावें समझो कि उस समय मन पर तमोगुण भौकका प्रभाव है। जब ऐश्वर्य्यकी चिन्ता हो समझो कि रजोगुण का राज्य है भक्त जन मनुष्योंके सुधारका सदा यत्न करते रहते हैं। महाराज भर्तृहरीजी कहते हैं यद्यपि यह किसी धनवान पश्चिमी अथवा विद्वान की साक्षी नहीं है तथापि यह उस महा पुरुषकी है जो ३३ क्रोड़का राज्य त्याग कर साधु बना—वह कहता है कि सात्विकी बुद्धि वाले तो यह चाहते हैं कि मेरा सुख तो इसीमें है जिसमें दूसरों अथवा संसारको सुख मिले और मुझे दुःख इसीमें है जिससे सारे संसारको दुःख हो। रजोगुणी कहते कि हम आनन्दमें रहें दूसरोंको न हमसे दुःख न सुख हो। तीसरे तमोगुण कहते हैं मुझको सुख हो चाहे दूसरोंको दुःख ही क्यों न हो। यह तीन प्रकार के मनुष्य भर्तृहरिजीने बताये हैं परन्तु एक पुरुष कहता है कि इनके अतिरिक्त एक चौथा वह है जो दूसरोंको दुःख देने और बिगाड़नेके लिये अपना कार्य भी बिगाड़ दे। सज्जनों! जब तक आप सतोवृत्ति न बढ़ायेंगे उन्नति नहीं हो सकती। जब आप अपने कार्यों अथवा व्यवहारोंका लेखा करते हैं, अपने उच्च कर्मचारी से भय करते हैं, बालक को लाड़ प्यार करते हैं अपने शरीरके बनाव श्रृंगार तथा सौन्दर्य्यमें समय देते कोट आदि पहननेमें घण्टों लगाते हैं तो क्या आप अपने मन को पवित्र करनेमें थोड़ा सा समय दे कर प्रयत्न नहीं कर सकते? भाई! जितने समयमें शरीर का श्रृंगार करते हो उसके आधे ही समय में मन शुद्ध बनाया

जा सकता है। जितने धर्म हैं उनका कारण मन है। यदि आप मनसे दुष्टभाव और विरोधका काम लेंगे तो दुःख आप के पीछे इस प्रकार चलेगा जैसे चक्र बैल के पीछे। जब आप जानते हैं कि मननशील करनेको मनुष्य कहते हैं तो फिर धिक्कार है कि अपना मन शुद्ध नहीं करते। कोई किसीका शत्रु नहीं मन ही शत्रु बनता है। जब मेरे मनमें विश्वास नहीं तो दूसरे को मैं कैसे विश्वास करा सकता हूं। इसलिये मनमें सतोगुणका प्रादुर्भाव करनेकी आवश्यकता है। ऋषि कहते हैं कि वेदके विषय सामान्य हैं परन्तु वह आपके समझने ही से समझ में आ सकते हैं। यह दूसरोंके दिखाने योग्य नहीं हैं। जैसे जो निर्बल है वह अपने धन की रक्षा नहीं कर सकता परन्तु बलवान कर सकता है। इसी प्रकार जब आज कल हमारे मस्तिष्क में विद्याके लिये आलस्य है तो किस प्रकार विद्या तथा वेद ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। आत्मा अवश्य उन्नति कर सकता है परन्तु पहले उस पर का आवरण हटा दो तुम कहोगे हम में सतोगुण नहीं है। एक कपड़ा दर्ज़ीके पास ले जावो और उसे कहो कि इसका कुछ बना दो वह पूछता है क्या बनादूं ? कमीज़ बनाऊं, अथवा कोट या पाजामा। तुम कहोगे भाई मैं कोट के लिये लाया हूं तुम कैसे कमीज़ अथवा पाजामा बना दोगे ? बात यह है कि जैसे उसकी विद्या की कतरनी (कैंची) वस्त्र पर चलेगी वैसे ही क़मीज़ पाजामा आदि वस्तुएं बन जावेंगी। इसी प्रकार मनुष्यका मन है। पुत्र ऐसा बनाया जासकता है कि बकरी से डर भागे। ऐसा भी बन सकता है कि सिंह को

मारे। शोक कि तुम स्वयं प्रयत्न न करो और कहो कि पश्चिमी विद्वानों ने कैसे आविष्कार किये। यदि हमको ऋषि दयानंद वेदों का संदेशा न सुनाते तो हम क्या जान सकते थे, गूंगे थे जो बातका उत्तर भी न दे सकते थे। आज उस की विद्या की कतरनी चलनेसे हममें वाग् शक्ति आ गई है। ईसाई मुसलमानोंके पराजय करनेके लिये आर्य्य समाज बन गया है अर्थात् जितना मल दूर हुआ उतना सतोगुण का प्रकाश हुआ जितना मल है उतना दोष है। जिस प्रकार हमारी ऐनक हरी है तो सब पदार्थ हरे रङ्ग हैं यदि रक्त वर्ण की हो तो सब पदार्थ रक्त दिखाई पड़ते हैं। बात यह है कि रक्त पीत रङ्ग दृष्टि पर आवरणका काम देते हैं यथार्थ रंग नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु श्वेत वर्ण में आवरण नहीं होता यथार्थ रूप दिखाई पड़ जाता है इसी प्रकार जीवके ज्ञानके आगे तम रज का आवरण पड़ा है उसको दूर करो यथार्थ तत्व प्रगट हो जावेगा। अरबी में एक कहावत है कि कतल अलमूज़ी क़बल अज़ईज़ा इस पर विचार करो कि जिस सर्प ने अभी काटा नहीं कैसे जाना कि वह मूज़ी (हिंसक) है अभी उसने काटा नहीं अतः क्यों मारें यदि मारें तो पाप है, परन्तु जब उसने काटा तब मारने की कोई आज्ञा नहीं और यदि बिना उसके काटे उसको हमने मार दिया तो मूज़ी, (सिंहक) हम हुए अथवा वह? भाईयो किसी ने कहा है:—

> बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से अम्मारा को गर मारा।
> निहंगो अज़दहा ओ शेरे नर मारा तो क्या मारा॥

मन ही यथार्थमें हिंसक है जितना कष्ट मनसे होता है

उतना दुर्भिक्ष रोग तथा हज़ारों सर्पोंसे नहीं होता। बहुत मारा हज़ार दो हज़ार मनुष्योंको सर्पोंने और सिंहों ने तनिक जर्मन युद्ध का चिन्तन करो एक मनके लिये कितने जीवन मारे गये॥

अरबी वाला कहता है कि तुम चोर बनने न पाओ किसी को कष्ट देने न पाओ केवल संकल्प ही आये तो उसको तत्काल रोक दो। मनुष्य का मन कप इष्टिके समान है इसे मद्यपान कराकर उस वानरकी चंचलताको देखो तो सही? मथुरा में आप भोजन बनाते खाते हैं, वानर आया आपने यदि उससे दो तीन बार दृष्टि मिलाई वह भाग गया अन्यथा रोटी लेकर चम्पत होगा। इसी प्रकार जब किसी धर्म कार्य्यमें धन देनेका संकल्प उत्पन्न हुआ और यह विचारा कि उसका सोडावाटर क्यों न पी लें व्यर्थ क्यों दें भूखे को भोजन क्यों न दें। परस्त्रीका दर्शन करके मन मलीन हुआ आपने तत्काल इस व्यभिचार पर दृष्टि देकर इसको दूर कर दिया, उसी प्रकार करने से स्वभाव पड़जाता है और मन आपके आधीन होजावेगा। समस्त शक्तियां आत्मा की हैं और मनसे उनका प्रादुर्भाव होता है, इन्द्रियां मन से सम्बन्ध रखती हैं तब सारे कार्य्य होते हैं जब मन इन्द्रियोंक आधीन हुआ तो मानो रईस साईस और साईस रईस बन गया राजा रंक होगया। बनमालीदत्त से हमने मथुरामें सुना कि एक समय ऋषि दयानन्द यमुना के तट पर समाधि लगाये ईश्वर स्मरणमें मग्न थे एक माता आई उन्होंने साधु जानकर उनके चरणों में शिर निवा दिया, ऋषि की आंख खुलते ही

लक्ष्य पर दृष्टि पड़ी। आप उठे और यह कहकर कि तुम यहां से चले जाओ, आप गोकुलमें पर्वत पर एक मन्दिरमें समाधि लगा भूखे प्यासे ३ दिन पड़े रहे, गुरुने खोज कराई पता लगा कि मनके इस पापसे मुकाबिला के लिये उन्होंने वेदाध्याय का त्याग करके उसका दुःख सहन किया ताकि फिर मन में कदापि ऐसा भाव उत्पन्न न हो। शोक है कि जब दीवाली आती है आप अपने गृहों को स्वच्छ करते हो दीप जलाते हो परन्तु कभी उस गृह के वासी को भी स्वच्छ पवित्र किया? प्रत्युत द्यूत खेलते हैं। हाय मकान की यह प्रतिष्ठा और उसके वासी की यह दुर्दशा। ऐसी दशा में उन्नति क्या होसकती है? लोग कहते हैं कि पुरुषों में कार्य्य शक्ति और वृद्धोंमें अनुभव शक्ति अधिक होती है जिस देशमें ऐसा न हो उसका क्या कहना? मित्रो जब तक हम स्वयं न भले बनेंगे दूसरोंको भला नहीं बना सकते। सारा प्रयत्न व्यर्थ है। देखो जब बैल थक जाता है तो रस्सी आगे पकड़ कर खींचनेसे नहीं चलता। पीछे से डंडा मारो चलने लगेगा परन्तु पशु और मनुष्य में भेद है। जो मनुष्य थका है पीछे से मारने से नहीं चलेगा परन्तु आगे खींचने से चलेगा हिन्दु जाति थकी है अब तुम स्वयं आगे चलाते जाओ और आगे खींचते जाओ। आंखे खोलो। विपत्ति से अधीर मत हो अधीर होने से कष्ट बढ़ता है जो इसका मुक़ाबिला करते हैं उनका कष्ट आधा रह जाता है। धैर्य्य द्वारा बल वर्धन करो और प्रार्थना करो कि "तेजोऽसितेजोमयिधेहि" हे ईश्वर आप तेज स्वरूप हैं हमको तेज दे, बल स्वरूप हैं मुझको बल दें

ऐश्वर्य्यवान हैं मुझको ऐश्वर्य्य देना परन्तु जैसे कोई एन्ट्रेंस पास करे और नौकरी की प्रार्थना करे उस पर आज्ञा हुई कि अभी तुम उमेदवारी करो परन्तु उसने न की तो क्या उसको नौकरी मिल सकती है या नहीं ? उसी प्रकार यह ठीक नहीं कि तुम केवल प्रार्थना ही करो और प्रयत्न कुछ न करो ॥

जैसे—कष्ट से सब कुछ मिले बिनकष्ट कुछ मिलता नहीं।
समुद्र में कूदे बिना मोती कभी मिलता नहीं ॥

जिसने धन कमाया, घोड़ा गाड़ी न रख कर अपना पेट काटकर धन संग्रह किया उसकी सन्तान सुख प्राप्त करेगी। जो तुम्हारे पुरुषाओं ने कमाया तुमने खाया अब तुम कमाओगे तुम्हारी सन्तान खावेगी। सारांश यह कि हमारी विद्या बल आदि पुरुषाओं के कर्त्तव्यों का फल है जो दुःख है वह पूर्वजोंकी भूलका फल है। अब ईश्वर पर विश्वास करके मनको पवित्र करनेका प्रयत्न करोगे तो सब तेजवान सामर्थ्य-वान होंगे ॥ ओ३म् शम् ॥

——○:-*-:○——

सफलता की कुंजी।

अभ्यास की महिमा—यदि मनुष्य विद्वान है तो उस को प्रत्येक वस्तु उपदेश दे रही है। जितनी भी प्राकृत वस्तुएं संसारमें दृष्टिगोचर हो रही हैं बुद्धिमानोंके लिये वह स्वयमेव एक उपदेशकका काम दे रही हैं। संसारमें जो मनुष्य अभ्यास शील हैं उनके लिये प्रत्येक काम कठिनसे कठिन भी सुगम

हो जाता है। परन्तु जो अभ्यास नहीं करते उनके लिये सुगम से सुगम काम भी कठिन प्रतीत होते हैं। अभ्याससे मनुष्य सर्व प्रकारकी शक्तिग्रहण कर सकता है। और अभ्यास ही परमात्माकी प्राप्ति का साधन है। अफलातूनसे लोगोंने पुछा कि आपने ज्ञान किससे सीखा? उत्तर दिया कि मूर्खोंसे? पूछा कि वह किस प्रकारसे? कहा कि मूर्खोंको बुरे कर्म्मोंसे दुःखमें ग्रस्त देखकर उनके विपरीत काम किया जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे दुःख हुआ। उनसे पूछा आप ने नम्रता किससे सीखी? उत्तर दिया कि वृक्षों से। उद्यानमें वही वृक्ष फलोंसे लदा हुआ है जो झुका हुआ है, इसी प्रकार संसारमें सच्चा विद्वान वही है जिसमें नम्रभाव हो। महात्मा दत्तात्रेय कहते हैं कि मैंने एक देवीसे शिक्षा उपलब्ध की। एक नया उदाहरण लेलो कि—हम भी तो प्रतिदिन महादेव की पूजा किया करते थे परन्तु हमारे ध्यान में न आता था कि मट्टी और पत्थरके महादेव परमेश्वर नहीं हो सकते। परन्तु ऋषिको एक चूहेको महादेव पर चढ़ते ज्ञान हो गया। कारण स्पष्ट है कि हम किसी वस्तुको उसके यथार्थ स्वरूपमें देखनेके अभ्यासी नहीं। जब हम संसारिक वस्तुओंको उनके यथार्थ रूपमें देखना सीखेंगे तब हमें प्रत्येक वस्तु शिक्षा देगी।

एक महात्माको किसी ने कहा महाराज कुछ शिक्षा दो, उसने उत्तर दिया कि संसार का पत्ता २ शिक्षा दे रहा है। वेदमें लिखा है कि संसारमें बहुतसे पुरुष देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते। अपने आपको अभ्यासमें लगाओ अपने आप लाभ उपलब्ध करोगे। दुःख और कष्ट

केवल इसलिये हैं कि हमने अभ्यासी जीवन नहीं बनाया। मातायें यदि कृपा करें तो गर्भ अवस्थासे ही बालकको अभ्यास शील बना सकती हैं। परन्तु मातायें नहीं समझतीं कि हमारे देशको इस समय कैसे बालकों की आवश्यकता है। जिस समय उनको यह ज्ञान होगा कि देशको शूरवीर बालकोंकी ज़रूरत है उस समय स्वयमेव शूरवीर बालक उत्पन्न होंगे। शिवाजी की माताने उसको लोरियोंमें यह शिक्षा दी थी कि यदि शत्रु को विजय करना है तो दूसरेकी स्त्रीको मातृ वत देखो। माता की लोरियों से शिवाजीका मन इतना दृढ़ होगया कि आज संसार में उसका यश है। रणजीतसिंहकी माताने भी देशकी अवस्था के अनुसार उसे तैयार किया था यही कारण था कि रणजीतसिंहने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्तकी थी। रणजीत सिंह अपनी विजय पताकाको देखकर एक दिन प्रसन्न हो रहा था उसने माता से पूछा माता! मैं किस प्रान्तको विजय करूं? माता ने उत्तर दिया :-

सब ही भूम गोपाल की उस में अटक कहां।
जिस के मन में अटक है वही अटक रहा॥

बालकों को शिक्षा कैसी देनी चाहिये:—प्रश्न उठाया गया है कि बालक को शिक्षा कैसी देनी चाहिये? शास्त्र कहते हैं कि बालक को जन्म से १६ वर्ष पहले शिक्षा दो। लोग आश्चर्य करेंगे कि वह किस प्रकार? शास्त्रों ने विधि बतलाई है कि जिस देवी के गर्भ से बालक ने जन्म लेना है उसको शिक्षा दो। परन्तु यह मातायें क्या जानें। दशा सारी की

सारी विगड़ी हुई है यदि उसको सुधारना चाहतेहो तो पुरु-
षार्थ करो। बालक बाल्यावस्थासे ही पुरुषार्थी होता है।
तनक प्यारसे उसे उन्नतिके मार्ग पर लगा दो सदैव उसका
पग उस पर ही उठेगा। शारीरिक उन्नतिकी न्याईं वह ज्ञान
आत्मिक उन्नतिकी ओर भी चलाता है, अन्वेषणकी शक्ति
बालक में स्वाभाविक होती है। बालक मातासे प्रश्न करता
है कि माता वह क्या निकला? माता कहती है कि चांद।
बालक फिर पूछता है चांद क्यों निकला? और किसने
निकाला। वह तो प्रत्येक बात का पूरा ज्ञान उपलब्ध करना
चाहता है परन्तु जब माता पिता स्वयम् ही नहीं जानते तो
उसे क्या बतावें? इसलिये वेद में कहा है "*मातृमान, पितृ-
मान, आचार्य्यवान् पुरुषोवेद*" सबसे पहला दर्जा माताको
दिया गया है। जो कुछ माता अपनी मातृभाषा में सिखला-
यगी वह सारी आयुभर बालकके हृदय पर अङ्कित रहेगा।
और यही कारण है कि सारे सभ्य देशोंमें शिक्षा मात्रीभाषा
में ही दीजाती है। अन्य भाषामें शिक्षा पाने वाले बालक इतने
विद्वान और धार्मिक नहीं बन सकते जितने अपनी भाषामें
पाने वाले बन सकते हैं। इस लिये मातृ भाषाके प्रचार का
यत्न करना प्रत्यक आर्य्यका कर्त्तव्य होना चाहिये। आप
पूछेंगे कि माता क्या शिक्षा दे सकती है? शिक्षा तो निःस-
न्देह वह कुछ अधिक नहीं दे सकती परन्तु शिक्षाका अधि-
कारी अवश्य बना सकती है। परन्तु शोक है, कि आज
हमारी माताएं पीरों, फ़क़ीरों और क़ब्रों का आश्रय ले रही
हैं। जिस प्रकार क़ब्र का एक भाग टूट जानेसे क़ब्र को कुछ

पता नहीं लगता—चूंकि हम जड़ पदार्थों की पूजा कर रहे हैं और यही हमारे उपास्य देव और हमारी जाति का एक भाग कट रहा है परन्तु हमें पता नहीं लगता। गौ, बैल आदि सब अपने पुत्र आप उत्पन्न करते हैं परन्तु मनुष्य के पुत्र पीरों फ़क़ीरों की सहायता से उत्पन्न किये जाते हैं। कारण यह कि हमारा वीर्य्य पुष्ट नहीं रहा। एक कृषक जितनी अपने बीज की पर्वाह करता है शोक कि हम उतनी नहीं करते। दयानंद एक था उस ने हम सब को चैतन्य किया परन्तु हम सब मिल कर भी एक दयानंद नहीं बना सकते। कारण यह कि दयानंद की माता ने उन पर संस्कार डाले थे। हम संस्कारों से शून्य हैं। शिक्षा का हमारे हां यह हाल है कि विदेशों में पशुओं को शिक्षित बनाया जाता है। बस हमारे पुरुष शिक्षा से सर्वथा शून्य रहते हैं और रहें भी क्यों न जब कि बालक तो माता के गर्भ में है नवां मास व्यतीत हो रहा है परन्तु पति पत्निमें घोर संग्राम हो रहा है और फिर आशा यह होती है कि बालक अच्छा और योग्य उत्पन्न हो। माताओ! बालक इस प्रकार नहीं उत्पन्न हुआ करते। बालकोंका उत्पन्न करना हमारे शास्त्रोंने एक भारी यज्ञ लिखा है। जिस प्रकार यज्ञ रचाने के लिये विशेष तैयारी की जाती है इसी प्रकार बालकों के लिये विशेष तैयारी करनी चाहिये तब धार्मिक और शूरवीर उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रार्थना का फल क्यों नहीं मिलता—लोग बहुधा यह कहते सुने जाते हैं कि हम नित्य प्रति परमात्मा से प्रार्थना करते हैं परन्तु फल प्राप्त नहीं होता? भद्र पुरुषो प्रार्थना तब

ही सार्थक हो सकती है जिसके साथ साथ कर्त्तव्य परायणता भी हो। हम संध्या में प्रति दिन परमात्मा से १०० वर्ष तक जीने की प्रार्थना करते हैं परन्तु हमारा कार्य्य क्रम वैसा नहीं। बल वीर्य्यको नष्ट करके शरीरको रोगी और निर्बल बना रहे हैं।

ऐसी दशामें भला परमात्मा हमारी प्रार्थना को क्यों स्वीकार करेगा? जो कुछ हम मन से प्रार्थना करें वैसा ही साथ २ कर्म्मलिप्त हों तब तो वह प्रार्थना स्वीकार होसकती है अन्यथा हम परमात्मासे हंसी ठठ्ठा कर रहे हैं। जिस प्रकार एक धनवानके पुत्रको उसको वृद्ध सेवकके द्वारा भूमि में दबा हुआ कोष मिल गया था ठीक उसी प्रकार स्वामी दयानंदकी कृपासे आपको खोया हुआ वेदका कोष प्राप्त होरहा है। अब भी यदि आपने इससे लाभ न उपलब्ध किया तो आप से बढ़कर अभागा और कौन होगा॥

(१) संसारमें यदि सुखी जीवन चाहते हो तो माताओ और भाइयो वेदोंके बतलाये हुए संस्कारोंसे शूरवीर बालक उत्पन्न करो।

(२) परमेश्वरको मानो और उसकी उपासना करो।

(३) संघातकी शक्ति को दृढ़ करो संसारमें संघातकी शक्तिमें ही सफलताका भेद छिपा है।

(४) प्रत्येकके साथ प्रेम तथा नम्रतापूर्वक बर्ताव करो।

(५) सारा दिन जगतके व्यवहारोंमें व्यतीत करते हो प्रातः तथा संध्या काल परमात्माके अर्पण करो और उसीसे बल मांगो यही सफलताकी कुंजी और उसके साधन हैं।

धर्म्म पर आरूढ़ रहो।

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानिपरासुव। यद्भद्रन्तन्नआसुव ॥

भद्र पुरुषो तथा माताओ ! इस वेद मंत्रमें प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मा आप हमें दुर्गणों से पृथक करके शुभ गुणों में लगाइये। भाइयो केवल प्रार्थना करनेसे हम बुरे कामों से नहीं हट सकते जब तक कोई साधन न होगा। दूर क्यों जाते हो अपने शरीर से ही इसका उदाहरण लेलो। हमारे मुख में तीन प्रकारके दान्त हैं। एक काटनेके, दूसरे कुतरनेके तीसरे चबानेके, यदि इन तीनोंमें से एक प्रकारके न हों तो भोजन अच्छी प्रकार पच नहीं सक्ता। प्रत्येक वस्तुकी प्राप्तिके लिये साधनोंकी आवश्यकता है। सुख के लिये यदि साधन हों, सुख नहीं मिल सकता। सुख पारसलों में बंद होकर कहीं बाहर से नहीं आता, परतंत्रा दुःख है और आत्म दर्शिता सुख, सुख मनुष्यके अन्तरात्मा में विद्यमान है। शास्त्रोंने बतलाया है जहां प्रेम है वहां सुख है प्रेम श्रद्धा और विश्वासमें है विश्वास सत्य में है सच्चाई विद्यासे ग्रहण कीजाती है विद्या बिना तपके प्राप्त नहीं होसकती और तप बिना ब्रह्मचर्य्यके नहीं होता। यदि आप इन छः दरजों को पार कर जाएं तो सुख पासकेंगे ॥

संसार सत्य पर स्थिर है—श्रद्धा सत्य के आश्रय पर खड़ी है, जिस श्रद्धा में सत्य नहीं वह फलदायक नहीं होसकती और न ही वह सत्य लाभकारी होसकता है जिसमें श्रद्धा नहो पौराणिकोंमें श्रद्धा बहुत है परन्तु सत्य नहीं, प्रत्युत आर्य्य

समाजियोंमें सत्य है किन्तु श्रद्धा नहीं परिणाम यह है कि दोनों को सुख नहीं नकल करने वाले भांडोंका कोई विश्वास नहीं करता यदि उसको वास्तव में उदर में पीड़ा होती होतो लोग यही समझते हैं कि हंसी कर रहा है। हमारे सारे कार्य्य असत्य पर ही चल रहे हैं जिसका परिणाम यह है कि परस्पर विश्वास नहीं रहा। यदि कोई दुकान वाला ठीक दाम भी बतलाता है तो विश्वास नहीं आता। परन्तु टिकट मोल लेते समय कोई अविश्वास नहीं करता क्योंकि वहां सत्य का विश्वास है। सत्यकी परीक्षा विद्यासे की गई है। जहां अविद्या है वहां अन्धकार है। अन्धकार विना प्रकाशके दूर न होगा।

प्राकृत अंधकारको दूर करनेके लिये प्राकृत प्रकाशकी आवश्यकता है और आत्मिक अंधकारके नाशके लिये विद्या की आवश्यकता है।

जो जाति विद्यासे विमुख हो जाती है, उसकी जितनी भी दुर्दशा हो थोड़ी है। मूर्ख जातिमें से सुखका अनुभव उड़ जाता है। काशीके विद्वान धर्म्मकी दुर्दशा देखकर चुप बैठ रहे परन्तु स्वामी दयानन्दका दिल फड़क उठा। वह उस अत्याचारको जो धर्म्मके नाम पर हो रहा था सहन न कर सका। सत्य धर्म्म विद्याका पति है। उसकी दो सन्तान हैं एक पुरुषार्थ दूसरा विज्ञान। ऋषि दयानन्दके भीतर जहां विद्या थी वहां सत्य धर्म्म भी था। उन्होंने विज्ञानसे अनुसंधान किया और पुरुषार्थसे उसको समस्त संसारमें फैला दिया। विद्या काशीके पंडितोंके पास थी परन्तु पुरुषार्थके बिना निरर्थक हो रही थी। यदि आप भी विद्याको बलवती

बनाना चाहते हो तो उसके साथ सदाचारका अवलम्बन करो वह विद्वान किसी कामका नहीं जो दुराचारमें लिप्त हुआ है। सदाचारही पवित्र विचार दे सकता है। प्रकाशमान अग्नि दूसरोंको प्रकाशमान कर सकती है।

बुझा हुआ लैम्प कभी किसी को प्रकाश नहीं दे सकता। गाड़ियां इंजनके साथही चल सकती हैं, जिस दिन इंजनसे पृथक होगई रह जायंगी। ऋषि दयानन्दके उपदेशोंसे लाभ उपलब्ध करके हम कुछ काम करनेके योग्य हो गये हैं। ऋषि से बढ़कर काम करना तो कहां हम सब ने मिलकर इस समय तक इतना काम नहीं किया जितना अकेला ऋषि कर गया है। इसका कारणस्पष्ट है कि हममें इतना उच्च सदाचार और तप नहीं जितना कि ऋषिमें था। देखा जाता है कि यदि मूर्ख पुरुष पाप करे तो इतनी हानि नहीं होती जितना कि एक पठित पुरुषके मद्यपालसे होती है। इसीलिये शास्त्रने विद्याके साथ सदाचारकी शर्त लगादी है। सज्जनगण तुम्हारे पूर्वजों ने धनको हाथकी मैल कहा है। यद्यपि स्वास्थ्यको धनकी कुछ परवाह नहीं परन्तु स्वास्थ्यसे भी अधिक सदाचारका ध्यान रखना चाहिये। परन्तु आज शोकसे देखा जाता है कि सदाचारकी अपेक्षा धनका अधिक मान है। जब तक आप सदाचारकी अपेक्षा धनको निकृष्ट न समझेंगे तुम्हारा कुछ न बनेगा। यही सीधी लाईन है जिस पर चलकर आप सुख पा सकते हैं।

आचारकी रक्षा किस प्रकार हो—अब प्रश्न यह है कि सदाचार आवे कैसे? आचार अधिकतर युवावस्थामें भ्रष्ट

होता है। जिस प्रकार हलवाईका दूध साधारणतया पहिले ही उबालमें कढ़ाईसे बाहर होता है इसी प्रकार वीर्य्यका नाश भी बालकपनमें होता है। जिस हलवाईने पहिले उबालमें दूध को गिरनेसे बचा लिया वह फिर अन्त तक हानि रहित हो जाता है। इसी प्रकार जो माता पिता २५ वर्ष तक अपने पुत्रों की ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा करते हैं उनके पुत्र आयु पर्यन्त सदाचारी रहते हैं। यही भाइयो! ऋषिने तुम्हारे सामने अपने जीवनका आदर्श रख दिया है। अब यदि इन व्यर्थ बातोंको नहीं छोड़ोगे तो मर जाओगे। तुमने आर्य्यसमाजमें आकर संसारके उद्धारका बीड़ा उठाया है। इसलिये तुम जिन विचारोंको संसारमें फैलाना चाहते हो पहिले स्वयम् उनका पालन करो॥

जीवन यात्रा।

सफलता और असफलतामें भेद—भद्रपुरुषो और माताओ। संसारमें यदि आप गूढ़ दृष्टिसे देखेंगे तो विना सफलताके मनुष्योंके लिये दुःख होता है। और जो संसारमें सफलताको प्राप्त कर लेते हैं उनको सुख होता है। सफलता को संस्कृतमें सामर्थ्य और असफलताको असमर्थ कहते हैं। शास्त्रने बतलाया है कि "हियम दुःखम्"—यदि इस बातको जान लिया कि दुःख क्या है। और उसका त्याग कर दिया तो सफलताको प्राप्त हो गये। यदि जानकर भी न छोड़ा तो असमर्थ रहकर परीक्षामें अनुत्तीर्ण होगए दुःखके कारणको पहले समझना और फिर उसको परित्याग करना

भी सफलता ही है। जिस समय कोई पुरुष अपनी असफलता को अनुभव कर रुदन करता है वही उसके लिये सफलताकी पहली सीढ़ी है। इस पर मैं दो उदाहरण देता हूं। एक धनवानने दो मल्ल (पहलवानों) के लिये ५००) का पारितोषक नियत किया, कि जो जीतेगा वही इसको ग्रहण करेगा। अब दोनों पहलवान मुकाबिलाकी तैय्यारी करते हैं। दोनों की यही इच्छा होती है कि एक दूसरेको गिरा लें। परन्तु जीतना एक ने ही है। लोगों के सन्मुख उनकी कुश्ती होती है दर्शकों के देखते २ एक पहलवान दूसरेको गिरा लेता है। उसके मुखकी ओर देखो और जो गिरा है उसकी ओर भी ध्यानसे देखो। सफलता प्राप्त मुख पर अखाड़े की मट्टी बहुत अच्छी लगती है उसकी छवि प्रसन्नतासे दुगनी होरही है। मुखकी कांति प्रसन्नता-पूर्ण दीख पड़ती है। परन्तु जो गिरा है उसके दुःख तथा खेद का कोई ठिकाना नहीं, असफलताने उसको इतना शोकमय बना दिया है कि उससे अब उठा भी नहीं जाता। यद्यपि यह कोई बड़ी बात न थी वह दूसरी वार जीत जायगा। यह एक शारीरिक सफलताका उदाहरण है दूसरा उदाहरण विद्याकी सफलता को लेलें। विद्यार्थी परीक्षा देते हैं एक उत्तीर्ण दूसरा अनुत्तीर्ण होजाता है॥

अब एक का मुख सफलता के कारण प्रफुल्लित और सुन्दर दृष्टि गोचर होरहा है और उससे जो भी मिलता है अपनी सफलताका वर्णन करता है, परन्तु दूसरा बहुत उदास है और वह किसीको बताता भी नहीं कि पास नहीं हुआ, क्यों ? इसलिये कि यह अपने इरादे में चूकगया है॥

संसार के अन्दर सफलता एक बड़ा मूल्यवान पदार्थ है। यदि संसारको एक अखाड़ा मानलें तो हम इस अखाड़े के पहलवान हैं। हमें इसमें सफलता प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। जिस प्रकार अखाड़ेके पहलवान और महाविद्यालय के विद्यार्थीका कोई विशेष लक्ष्य है इसी प्रकार संसारमें हम सबका कोई विशेष उद्देश्य है जिसके लिये हमें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है परन्तु शोक कि हम यथार्थ उद्देश्यको नहीं समझते हमारी दशा तो ठीक उस पुरुषके समान है जो बड़ी तेज़ीसे भागा जा रहा है, लोग उसे पूछते हैं कि कहां जारहे हो। वह उत्तर देता है कि मुझे कुछ पता नहीं। आप लोग भी इस पुरुष पर हंसेंगे परन्तु आप अपनी दशा पर विचार करें कि आपकी क्या गति है।

स्वामीजी महाराज फरुखाबाद प्रातः ४ बजे जारहे थे। मार्गमें दो चार जन्टलमैन मिले उनसे पूछा कि कहां जारहे हो? उत्तर दिया कि "यूंही" कोई विशेष लक्ष्य नहीं। परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि इरादा जब तक क्रियाके साथ न हो उसका फल नहीं हो सकता। शारीरिकमें लिखा है कि भोजन खाओ धीरे २ परन्तु उसका स्वाद अच्छी प्रकार लो, परन्तु बाबू लोगोंको स्वाद कहां? साढ़े नौ बज चुके हैं कचहरीका समय होचुका है जल्दी २ ग्रास अंदर फेंकते जाते हैं इसका परिणाम यह होता है कि भोजनका पूरा लाभ नहीं हो सकता। तो मैंने आपको बतलाया कि प्रत्येक क्रियाके सन्मुख उसका लक्ष्य होना चाहिये। प्रश्न स्पष्ट है:—

जीवनका उद्देश्य क्या है? हमारे जीवनका उद्देश्य क्या

है ? हम किस प्रकार उसमें सफल हो सकते हैं। सफल और असफलता प्रत्येक संसारिक कार्य्योंके समान यहां भी विद्यमान हैं। मृत्युका भय हर समय लगा रहता है। न्यायशास्त्रने एक उदाहरण दिया है कि बिल्लीको देखकर कबूतरको आंखे बन्द कर लेनेसे बिल्लीका भय दूर नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार जीवन उद्देश्यसे अनभिज्ञ रहनेसे मृत्यु टल नहीं सकती। निश्चय रूपसे यह जानते हुए कि आपने एक दिन नहीं रहना, आप उद्देश्यसे असावधान हैं नहीं सोचते कि हम मृत्युके डरसे किस प्रकार बच सकते हैं। क्या मृत्युसे बचनेका उपाय डाक्टरों वैद्योंके पास है ? यदि डाक्टरों अथवा वैद्योंके पास मृत्युकी औषधि होती तो बड़े २ राजा महाराजा न मरते तो क्या फिर मृत्युका कोई उपाय नहीं ? उपाय अवश्य है। महात्मा बुद्धके सम्बन्धमें एक दृष्टान्त दिया जाता है:—

एक माताका पुत्र मर गया, उसको महात्मा बुद्धका पता मिला। वह अपने पुत्रके मृतक शरीरको लेकर महात्मा बुद्धके पास आई और कहा इसे जीवित करदो। महात्माने उत्तर दिया कि मैं इसे जीवन प्रदान करदूंगा यदि आप थोड़ी सी मट्टी उस ग्रहसे ले आवें जिसका कोई न मरा हो, वह स्त्री सारे नगरमें फिरी परन्तु उसे कोई घर ऐसा न मिला जिसका कोई न मरा हो, उस पर उसे शांति आगई कि प्रत्येक के शिर पर कालका शस्त्र लटक रहा है अतः कोई मनुष्य किसीको नहीं बचा सकता। निर्बलको बलवान तो बचा सकता है परन्तु बलहीन नहीं। परमात्मा सबसे बलवान है मृत्यु पर भी उसका पूर्ण अधिकार है इसलिये उसकी शरण

में जानेसे हम मृत्युसे बच सकते हैं।

जो परमात्माकी सत्ताको नहीं समझते उनको मृत्यु नहीं छोड़ती। मृत्युका भय असफलके लिये दुखदाई है जिसके पास रावलपिंडीका टिकट हो और उसको लाहौरमें गाड़ीसे उतार दिया जावे उसको तो दुःख होगा, परन्तु जिस समय रावलपिंडीमें उसे उतारा जाता है वह बहुत प्रसन्न होता है और स्टेशन आनेसे पूर्व ही अपने वस्त्र आदि संभालकर तैयार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार यह जीवन यात्रा है। जब तक हमने मृत्युकी व्यवस्था नहीं समझी हम मृत्युके भयसे रोते हैं परन्तु जब हमने जीवन मरणकी समस्याको समझ लिया सारे भय दूर होजाते हैं जिस परमात्माके शासनमें जल पृथ्वी आकाश अपनी मर्य्यादाको नहीं छोड़ते उसकी शरणमें जाने और उससे लौ लगानेसे मृत्यु दुखदाई नहीं रहती॥

उपनिषदोंमें एक दृष्टान्त आया है कि एक राजाको रात्रिमें स्वप्न आया कि वह एक शृगालके भयसे मैदानमें भाग रहा था। दौड़ते २ उसको एक वृक्ष मिल गया वह उस पर चढ़ गया और उसे शान्ति आगई परन्तु नीचे दृष्टि की तो क्या देखता है कि सर्प मुंह खोले बैठा है। दूसरी ओर काले और श्वेत दो चूहे वृक्षकी जड़को खोखला कर रहे हैं।

वृक्षके ऊपर मधुका छत्ता है ऊपर देख रहा था कि मधुकी एक बूंद उसके मुंहमें पड़ गई सारे दुःख भूल गया मधुका स्वाद ले ही रहा था कि इतनेमें उसकी आंख खुल गई। अब वह सोचता है कि क्या स्वप्न है? उपनिषद्कार इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वह मैदान जिसमें

राजा भाग रहा था यह संसार है। वह शृगाल जिसके भयसे भाग रहा था "मृत्यु" है। वृक्ष मनुष्यकी आयु है। सर्प मृत्यु की चिन्ता, काले और श्वेत चूहे रात दिन हैं जो मनुष्यकी आयुको काट रहे हैं। जो दिन व्यतीत होता है यही आयुको न्यून करता है। मक्खियां शरीरके रोग हैं इतने कष्ट होते हुए भी मनुष्य इनको भूल जाता है किस लिये ? मधुकी बिन्दुरूप इन्द्रियोंके विषयसे।

भर्तृहरीजीने कहा है। कि दिन और रात्रिके चक्रमें आयु व्यतीत होरही है। सामने देख रहा है कि अमुक वृद्ध होरहा है अमुकका पुत्र मर गया इन दशाओंको देखकर भी भयभीत नहीं होता इसका कारण केवल यह है कि मनुष्य संसारके चक्रमें आया हुआ है। जिस प्रकार एक मदिरा पीनेवाला मान अपमानका तनक भी विचार नहीं करता, इसी प्रकार संसारके मोहरूपी मद्यमें मनुष्य मृत्युकी पर्वाह नहीं करता।

छान्दोग्य उपनिषद्में आया है कि आत्मा जन्म और मरणके बंधनसे परे है। जन्म और मृत्यु तो शरीरका है। इस लिये कहा है कि शरीरके अरोग्य होने पर ही उसका स्मरण करो ताकि अन्त अच्छा हो और अन्त समयमें उसका स्मरण हो। जो लोग आयु भर सांसारिक व्यवहारोंमें लिप्त रहते हैं उनको अन्तमें भी वही स्मरण आते हैं। इसलिये वह समय बहुत बुरी तरह व्यतीत होता है। महात्मा कृष्णचन्द्रने कहा है कि प्रभुका स्मरण अन्त समय अवश्य होना चाहिये। एक युवक जो कालिजमें पढ़ता है डाक्टर उसकी दाढ़ निकालने

लगे और उस समय उसको कहे कि अब कालिजकी ओर ध्यान कर, पीड़ासे क्लेशित विद्यार्थीको कालिजका स्मरण नहीं हो सकता। ऋषि दयानन्द जिसके सारे शरीर पर छाले पड़ चुके हैं प्राणान्त होनेमें १० मिंटकी देर है उस समयभी उनके मुखसे "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो," ही निकलता है।

यह है अभ्यास की शक्ति। अफ़ीम साधारण पुरुषों के लिये विष है परन्तु जिन का स्वभाव होचुका है उनके लिये अफ़ीम एक भोज्य पदार्थ है। इसी प्रकार यदि प्रभुका अभ्यास करोगे तो मृत्युके समय वही स्मरण होगा। और उस समय मृत्युका भय न रहेगा। आप चीलको प्रतिदिन देखते हैं कि जब उड़ती है तो उसके पंख नहीं हिलते क्योंकि उसको अभ्यास हो चुका है। मुरगाबी जलमें रहती है परन्तु जल उसके उड़नेमें बाधक नहीं होता, परन्तु एक काक यदि जल में डुबकी लगाए तो उसके लिये उड़ना कठिन होजाता है। यह है अभ्यासकी शक्ति। इसी तरह जैसा आयु पर्य्यन्त आप ने अभ्यास किया है वैसा ही चित्र मृत्यु के समय आपके साम्हने प्रस्तुत हो जावेगा। यदि आपने फ़ोटो खिचंवानेके समय आंखें बन्द करली हैं तो चित्रमें भी आंखें बन्द रहेंगी। जैसे कर्म्म किये हैं वैसा ही चित्र अन्त समय खिंच जावेगा। उस समय न किसी वकील की आवश्यकता होगी न बैरिस्टरकी। अपराधी स्वयमेव स्वीकार कर लेता है कि वस्तुतः मैंने अमुक खोटे कार्य्य किये थे मैंने बहुतेरे लोगोंसे उन खोटे कर्म्मोंको छुपाया परन्तु शोक कि आज वह सब प्रगट होगये और जिनके लिये मैंने यह पाप किये थे वह भी आज मेरा

साथ नहीं देते। इसी लिये शास्त्र कहते हैं कि माता पिता स्त्री पुत्र सबकी सहायता करो, परन्तु धर्मके अनुसार। किसीके लिये अधर्म न करो। यदि अधर्मके साथ उनकी सहायता करोगे तो तुम्हें कष्ट होगा परन्तु शोक हम परमेश्वर से भय नहीं करते प्रत्युत मनुष्योंसे भय करते हैं। जब कभी कोई बुरा काम करने लगते हैं तो चहुं ओर देखते हैं कि कोई मनुष्य तो नहीं देखता। हम दो आंखों वालेसे भय भीत होते हैं परन्तु नहीं जानते कि वह परमात्मा जिसकी व्यवस्था शास्त्रों ने यह की है कि सब ओर उसकी चक्षु है वह हमें सब ओरसे देख रहा है। एक विचार शील पुरुषने कहा है कि जितने पापके कार्य्य हैं वह सब अंधेरेमें होते हैं प्रकाशमें नहीं। प्रकाशमें पापका क्या काम? आत्मामें परमात्माका प्रकाश है। पाप और पुण्यकी अवस्था हमको दूसरोंसे छिपा सकती हैं परन्तु अपनेसे नहीं छिप सकती। आप जानते हैं कि आपने क्या २ कर्म किये हैं उसी प्रकार मैं भी जानता हूं परमात्मा सब के मन की जानने वाले हैं इस लिये वह उनके लिये सब एक रस हो जाता है उपनिषद् कहते हैं:—

श्रोतस्य श्रोत्रम् मनसो मनाः—वहचक्षुकी चक्षु,कानोंका कान, और मनोंका मन है। आपके मनमें जो बात है भगवान् उसको जानते हैं इसी उपनिषद्ने कहा है:—

यो भूतश्च भव्यश्च सर्वदा तिष्ठति।

वह परमात्मा कैसा है? परमात्मा भूत और भविष्यत के चक्कर में नहीं आता उसके लिये सब एक रस वर्त्तमान

लगे ओर ...ान क्या है ? कोई नहीं बतला सकता। भूत और ध्यान ...व्यतमें जिस ने भेद किया है वही वर्त्तमान है वर्तमान हो...तीत नहीं होता परन्तु सदा बना रहता है इसी प्रकार परमात्मा प्रतीत नहीं होता परन्तु तुम्हारे पास रहता है तो फिर उससे असावधान होकर किस प्रकार सुख पा सकते हो? लोग कहते हैं कि योरुपके नास्तिक किस प्रकार सुख पा रहे हैं? मैं कहता हूं कि यह ठीक नहीं है जिस प्रकार आप उन्हें नास्तिक समझ रहे हैं वह नास्तिक नहीं हैं। और जो वास्तवमें नास्तिक हैं वह सुख नहीं पा रहे। उनके सुख दुःखका अनुमान मैं और आप नहीं कर सकते। शास्त्र ने कहा है कि कृतघ्नतासे अधिक कोई पाप नहीं। किसीके उपकार को न जानना सब मतोंमें पाप माना गया है। परमात्मा ने हम पर क्या कम उपकार किये हैं? जिन वस्तुओंका जीवनसे सम्बन्ध है वह उसने सबके लिये प्रदानकी हैं। वायुके बिना जीवन एक घण्टा नहीं रह सकता वायु जैसी अमूल्य वस्तु उसने सबके लिये मुफ़्त दी है। प्रकाश न हो तो संसार में अन्धकार फैला जावे। प्रकाशके दामका अंदाज़ा कौन कर सकता है, परन्तु परमात्माने प्रकाश भी अधमसे अधम मनुष्यके लिये प्रदान किया है। कोई आपको १०) मासिककी नौकरी देता है आप नित्य प्रति उसके आगे शिर निवाते हैं, परन्तु वह परमात्मा जिसने इतनी बहुमूल्य वस्तुएं आपको और सारे संसारको दी हैं यदि उसका चिन्तन न किया जाव तो आपसे अधिक पापी और कौन हो सकता है। वेद कहते हैं कि अन्त समयमें ओ३म् का स्मरण करो, परन्तु

हमको भूमि पर पड़े हुए भी गाड़ी घोड़ों और पुत्र पौत्र की ही चिन्ता शोकातुर कर रही है। ऋषियों ने तो ऐसे नियम बनाये थे कि आयु भर मनुष्य प्रभु स्मरण करता रहे, परन्तु हम उनका पालन नहीं करते। जातकर्म्म संस्कारके समय बालक की जिह्वा पर 'ओं और कानमें भी यही शब्द कहा जाता है इसका आशय क्या है? यही कि हे बालक यह मनुष्य जन्म तुम्हें परमात्माको स्मरण करने के लिये मिलाहै परन्तु हम इसको भूल कर कष्ट उठा रहे हैं॥

गृहस्थ का बोझ हम आयु पर्य्यन्त उठाते हैं किन्तु वेदोंने नियम बांध रखे हैं कि २५ वर्ष ब्रह्मचर्य्यको समाप्त करके फिर २५ वर्ष ग्रहस्थ और उसके पश्चात् वानप्रस्थ और फिर सन्यास। परन्तु हम २०० वर्ष के होजावें तो भी हमारी तृष्णा गृहस्थ से पूर्ण नहीं होती, गृहस्थका बोझ तो मरते समय तक नहीं छोड़ते और फिर कहते हैं कि प्रचार नहीं होता। भला प्रचार का काम तो स्वतन्त्र सन्यासियोंका है परन्तु अब करने लगे मैं और आप। जिनको धर्म्म की अपेक्षा व्यक्तियोंका अधिक ध्यान है। यही कारण है कि सचाईको हम लोगनिर्भय होकर नहीं प्रगट करते। धर्म्मके प्रचारके लिये सबसे अधिक पुष्ट साधन 'सत्य है। आपको विदित है कि महाराजा अशोक ने किस प्रकार बुद्ध धर्म्मको ग्रहण किया था?

एक बार मैं छत्तीसगढ़में गया। वहांके राजा भी कबीरदासी थे मैंने मालूम किया कि यहां के राजा का इस मत्तमें कैसे प्रवेश होगया। उत्तर मिला कि एक बार एक कबीर दासीने एक झूठी साक्षी देदी। उसके प्रायश्चितमें सब

कबीर पन्थी नदीके तट पर जाकर भूखे रहे। इस तपका राजा पर गहरा प्रभाव पड़ा और यह भी कबीर पन्थमें दाखल होगया॥

राजा अशोक एक समय वन में मृगया के लिये गए। उसी वनमें बुद्धभिक्षु रोगी पशुओंकी मरहम पट्टी कर रहे थे। राजाको आते देख कर सब पशु बिलबला उठे। इन पशुओं की यह अवस्था देखकर राजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने बुद्ध धर्म्म को ग्रहण कर लिया। लंकामें बुद्धमतके प्रचारका विचार हुआ प्रश्न उठा कि कौन जावे? सब धार्मिक पुरुषोंने प्रस्ताव किया कि राजाका पुत्र जावे तब बहुत प्रचार होगा। वह तैयार होजाता है। थोड़ी दूर जाकर वह लौट आया। लोग समझते हैं कि महेन्द्र भयभीत होकर वापिस आ गया है परन्तु वह उत्तर देता है कि मेरे मनमें तो यह विचार उत्पन्न हुआ है कि मैं तो पुरुषों में प्रचार करूंगा परन्तु स्त्रियों में कौन करेगा? इस लिये वह अपनी स्त्रीको संन्यासिन बना कर अपने संग लेजाता है। इसका परिणाम जो कुछ हुआ वह आप के सन्मुख है।

सज्जन गण! मृत्युके अखाड़ेको जीतने और संसार में वैदिक धर्म्मका प्रचार करनेके लिये पुरुषार्थ की आवश्यकता है। यदि आप अपने पुरुषार्थमें पास नहीं होते तो रिआयती पास होजाओ। ताकि यह मनुष्य जन्म तो दोबारा मिल जावे।

सब शक्तियां आपमें विद्यमान हैं। इनके प्रकाश की आवश्यकता है जिस समय परस्पर सहानुभूतीका प्रादुर्भाव होगा "स्वार्थ" स्वयमेव दब जावेगा उपकारका भाव मनमें

आते ही स्वार्थ का भाव दब जाता है। नौशेरवां न्यायके लिये बड़ा प्रसिद्ध था। कहते हैं कि उसने मकान पर एक संगली बांध रक्खी थी और खुली आज्ञा थी कि जिसको भी मेरे राज्यमें कोई शिकायत हो उसका पूरा न्याय होगा। एक दिन एक वृद्ध स्त्रीका पुत्र राजाके पुत्रकी गाड़ीके नीचे आकर मर गया। वृद्धाने जंजीर हिलाकर न्यायकी प्रार्थना की और कहा कि जिस प्रकार मेरा पुत्र मारा गया है इसी प्रकार इसको मारा जावे। राजाने आज्ञा देदी। उसी समय वृद्धा का मन प्रेममय होगया और उसने राज्य पुत्रको छाती से लगा लिया और कहा कि मेरा पुत्र यही है॥

सुकरात ने कहा कि वही मनुष्य सफलता को प्राप्त होगा जो दो वस्तुओं को भुला देगा एक अपनी नेकी और दूसरी दूसरेकी बदी। शत्रुको मारनेके लिये उपकारका आरा चलाओ शत्रुता दूर होजायगी। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि घृणा से घृणा बढ़ती है प्रेम से घृणा दूर होती है।

इसलिये संसारमें यदि सफलता चाहते हो तो दो वस्तुओंको सदा ध्यान में रक्खो (१) परमात्मा (२) मौत। मृत्यु परमात्माके आधीन है। मृत्युको हर समय स्मरण रखने से पाप नहीं होता। क्या आप नित्य प्रति नहीं देखते कि जिस समय श्मशान भूमीमें जाते हैं हमारे विचार मृत्यु और परमात्माकी ओर लग जाते हैं और उस समय पापका लेश भी मनमें नहीं रहता। इसी प्रकार जो मनुष्य मृत्यु को हर समय ध्यानमें रखते हैं पाप उनके निकट नहीं फटकता। यह विचार भी कुछ पुष्ट नहीं कि मनुष्य संसारके सारे काम

धंधोंको छोड़कर व्यर्थ पड़ा रहे । भलाई और प्रभुका चिन्तन प्रत्येक स्थान और दशामें होसकता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि पुलीस और कलक्टरका भय उनको है जो पापी हैं जो अपराधी नहीं उनको न तो पुलिस का भय न मजिस्ट्रेट का डर। इसी प्रकार यदि संसार में रहते हुए हम भगवान का स्मरण करते और पापों से पृथक होते हैं तो हमको मृत्यु से क्या भय ?

आपका एक भाई रोगी होजाता है आप उसके लिये वैद्य अथवा डाक्टर को बुलाते है परन्तु लाभ कुछ नहीं होता और लाभ हो भी कैसे ? जब कि अन्धेरी कोठरी में बैठकर उसके मनको कोई काटरहा है। मातापिता कहते हैं इसका रोग हमको लग जावे परन्तु लगे कैसे ? जिसने पाप किये हैं फल तो उसने पाना है ॥

एक कविने बतलाया है कि जगत्में कैसी अन्ध परम्परा चली हुई है, जहां नित्य सम्बंध है वहां अनित्य समझ रहे हैं और जहां अनित्य है वहां उसे दृढ़ता से पकड़ा हुआ है। धर्म्म जिसने लोक तथा परलोक में सुखी रखना है उसको तो भूले हुए हैं परन्तु अधर्म दिन रात कर रहे है ॥

स्वामी स्वरूपानन्दने जब तहसीलदारीसे पैन्शन ली और रुपया पैसा अपनी स्त्रीको देकर नगर से चलने लगे तो उसकी स्त्री ने कहा कि आप बाहर न जावें। स्वामीने कहा कि आप भी चलें परन्तु वह न मानी और थोड़े दिनों पीछे उसका देहान्त होगया। फिर उसके पुत्रोंने स्वरूपानन्द को बाहर जाने को रोका और कहा कि हम उद्यानमें आपके

लिये कुटिया तैयार करा देते हैं परन्तु उन्होंने स्पष्ट बता दिया कि मेरा जो कर्त्तव्य था वह मैं पूर्ण कर चुका अब मैं तुम्हारे बच्चों के लिये अपने उद्देश्यको भूल नहीं सकता क्योंकि उनका लालन पालन अब तुम्हारा धर्म्म है।

वृद्धोंके लिये चाहिये तो यह था कि यदि सारी आयु में उन्होंने कोई तोशा साथ नहीं लिया तो न्यून से न्यून इस आयु में ही अपनी यात्रा की तैयारी करते। परन्तु अब भी वह बालकों के हाथ क्रीड़ा में लगे हैं। वह संसारको छोड़ने को तैयार नहीं यद्यपि संसार उनसे छुड़ा लिया जावेगा।

इसलिये भद्र पुरुषो ! यदि संसार यात्रासे सफलता पूर्वक पार होना चाहते हो तो अभीसे सफल होनेके लिये यत्न करो। असफलताके जीवनमें मरना अच्छा नहीं। माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि सब अपने स्वार्थके मित्र हैं इसलिये उनके साथ इतना ही सम्बंध रखो जिससे यथार्थ उद्देश्य दूर न होसके। सबके साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा वैदिक धर्म्मने प्रतिपादन किया है। यदि इससे अधिक सम्बन्ध रखोगे और इनके मोह मायामें अधिक फंसोगे तो यह दुर्लभ्य मनुष्य जन्म जो कई जन्मोंके पीछे प्राप्त हुआ है व्यर्थ चला जावेगा और अन्तमें चीखते चिल्लाते असफल जीवन व्यतीत कर शरीर छोड़ दोगे॥

मोक्ष मार्ग।

कार्य्यमें असिद्धि क्यों है:—भद्र पुरुषो तथा माताओ! जो रोगी औषधिके कड़वापन पर ध्यान देता है वह निरोगी

नहीं होसकता। औषधिका सम्बंध स्वादसे नहीं किन्तु रोगसे है। इसी प्रकार जो श्रोतागण व्याख्यानोंकी सुवक्तृता और उनकी मिठासका विचार करते हैं, यह वास्तवमें कोई उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। उपदेश वही उत्तम होसकता है जिस से आत्मा पर चोट लगे, परन्तु प्रायः देखा जाता है कि व्याख्यान उसका पसंद किया जाता है जो हंसी ठट्ठाकी बातें अधिक करे, परन्तु व्यासदेवजी कहते हैं कि सुधार ऐसी बातोंसे नहीं हो सकता जिसने मोहनभोग खाकर ज्वर चढ़ा लिया है उसका ज्वर कुनीन जैसी कड़वी औषधिसे उतरेगा भाइयो! संसार सत्यमार्ग पर नहीं आ सकता जब तक कपिल ऋषिके सिद्धान्तोंका पालन नहीं किया जाता वह कहते हैं कि पुस्तक, पढ़ने वालेके कभी हाथमें कभी बगलमें और कभी शिर पर होती है परन्तु उपदेशजनक बातें हर समय और हर स्थानमें उसके साथ रहती हैं। यदि उपदेशका क्रम टूट जावे तो संसारमें अन्ध-परम्परा चल जावे। अंधेको अंधा मार्ग नहीं दिखा सकता। चक्षुवहीन पुरुषको आंखों वाला ही पथ दर्शा सकता है। इस समय श्रोता और वक्ता कोई भी दोषसे रहित नहीं। न वक्ता दिली लग्न और शुद्ध आचारसे उपदेश करते हैं और न श्रोता सच्ची श्रद्धासे सुनते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि सैकड़ों उपदेश श्रवण करने पर भी मन पर कोई भाव अङ्कित नहीं होता है। क्या कारण है कि महर्षि का उद्देश्य फलदायक नहीं होता? कारण यही कि अच्छे उपदेशक नहीं। अकेला ऋषि जो काम कर गये हैं सैकड़ों उपदेसक होने पर भी उस जैसा किञ्चितमात्र भी नहीं होता। उप-

देशकों ने केवल व्याख्यान देना अपना कर्त्तव्य समझ रखा है और श्रोता भी ऐसे ही मिले हैं कि जो सुननेसे अधिक कोई कर्त्तव्य नहीं समझते। परन्तु उपनिषद्में कहा है कि केवल सुननेसे कुछ नहीं बनेगा जब तक मननशील न होंगे। जो मनन नहीं करता वह सच्चा श्रोता नहीं। गौ एक ही समयमें घास जल्दी जल्दी खा लेती है परन्तु धीरे २ जुगाली करती है यही उसके निरोग होनेका चिन्ह है। जो गौ जुगाली नहीं करती उसके स्वामीको चिन्ता लग जाती है। इसी प्रकार जो मनुष्य उपदेश सुन कर फिर उस पर विचार नहीं करता उसके सुधारकी कोई आशा नहीं। यह तो आपके दोष हैं परन्तु दूसरी ओर वक्ताओंकी क्या दशा है? प्रतिनिधि सभाएं जैसा भी पुरुष उन्हें मिलता है उसकी आचार व्यवहार, धर्म्म पर श्रद्धा और विद्याकी परीक्षा किये बिना ही उसे उपदेशके काम पर लगा देती हैं। उपदेशक भी जब उसको २५) रुपये मिल जाते हैं तो समझता है कि मैंने सभा को अच्छा उल्लू बनाया है। जब दोनों ओर ही दोष हैं सुधार हो तो कैसे? फिर शिकायत यह होती है कि आर्य्य समाज उन्नति नहीं करता। जिन साधनोंको तुम सेवन कर रहे हो क्या इन से उन्नति हो सकती है? कदापि नहीं। बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि तुम्हारे जीवनके साथ जनता (पबलिक) का जीवन है, इस लिये ए मेरा उपदेश मानने वालो! यदि तुम चाहते हो कि संसारमें तुम्हारा धर्म फैले तो पहिले अपना सुधार करो। जो मनुष्य कुच्छ लाभ करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि पहिले लोभ को छोड़ें। लोभी मनुष्य

कुछ उपलब्ध नहीं कर सकता । महात्मा कृष्णने भी इस बात पर वल दिया है । लोग कहते हैं कि पहले उपदेशकोंमें बड़ा प्रभाव हुआ करता था परन्तु आज नहीं । कारण यह है कि वह अपने उपदेशोंका स्वयम् पालन करते थे । कोई पुरुष एक महात्माके पास अपने पुत्रको लाया और कहा कि महाराज यह गुड़ बहुत खाता है इसको उपदेश करें कि छोड़ दे। महात्मा स्वयम् गुड़खाया करते थे। कहा कि १५ दिन के पश्चात लाओ । १५ दिन के अन्दर महात्माने आप गुड़ खाना छोड़ दिया और फिर उस लड़केको उपदेश किया । आपने विचारा कि इतने उपदेशोंके होने पर भी बुराई वढ़ रही है। अधिक बुराई इसलिये वढ रहा है कि जो उपदेश करने वाले हैं इनका जीवन स्वयमेव ऐसा नहीं जिसका वह उपदेश करते हैं । यह एक बड़ी भारी रुकावट है जिस कारण हम असिद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ॥

जब संसारका मार्ग बिगड़ा हुआ है तो मोक्षका मार्ग हमें कैसे प्राप्त हो सकता है ।

स्वतन्त्रता कैसे मिले—एक पापी पुरुष जो सारे अधर्म युक्त कामोंमें फंसा हुआ है अपने आपको स्वतन्त्र वतलाता है । यदि यही स्वतन्त्रता है तो फिर बंध किसमें है । इसीलिये शास्त्र कहते हैं कि उपदेशका अधिकार उस पुरुषको है जो स्वयम् दोषोंसे मुक्त हो । सोतेको सोने वाला नहीं जगा सकता । हम चाहते हैं मोक्षको परन्तु उपासना करते हैं प्रकृति की; जो स्वयम् जड़ है और बंधनमें है मोक्षकी प्राप्ति कैसे ?

एक राजा जिसको मोक्षकी इच्छा थी वह किसी महा-

त्माके पास गया और कहा भगवन्! मुझे मोक्ष मार्ग बतलायें। महात्माने कहा फिर आना। राजा फिर गया। उसने फिर आनेको कहा एक दो वार राजा फिर गया उसने फिर आने को कहा। इसी प्रकार राजाको वापिस कर देने पर जब उसे अच्छी तरह जिज्ञासा होगई तो एक दिन महात्माने राजाको उसके कर्म्मचारियों समेत अपने शिष्योंसे मुश्कें बंधवादीं और राजाको कहा, कि अपने कर्म्मचारियोंकी मुश्कें खोल दो, राजाने कहा कि महाराज मैं कैसे खोल सकता हूं? मैं तो आप बंधा हुआ हूं। तब महात्माने राजाको बतलाया कि राजा यही प्रकृतिकी दशा है जिसके तुम उपासक बने हुए हो। प्रकृति स्वयम जड़ वस्तु है वह तुम्हारे बन्धनोंको कैसे काट सकती है।

संसारमें हम देखते हैं कि छोटे सेवक बहुत हैं परन्तु गवर्नर जनरल सारे भारतमें एक है, परन्तु इच्छा सबकी यह है कि मैं गवर्नर जनरल बन जाऊं, बनता कोई २ है इसी प्रकार मोक्षकी इच्छा रखने वाले अनेक हैं, परन्तु मुक्त जीवन बहुत थोड़े हैं। इसीलिये ऋषियोंने बतलाया है कि संसारकी परीक्षा करो, संसारके कर्म्म नित्य नहीं हैं। मेरा सम्बन्ध मेरे मित्रके साथ नित्य नहीं है। यदि सम्बन्ध नित्य होता तो मेरा मित्र न मरता परन्तु परमात्माका सम्बन्ध हमारे साथ नित्य है॥

आज कल वैराग्यकी बुरी गति होरही है। कई संस्कृतज्ञ झूठे वैराग्यको ही वैराग्य समझ रहे हैं, परन्तु अंग्रेज़ी वाले कहते हैं कि जितना सत्यानाश किया है सब वैराग्यने ही किया है। भला कभी वैराग्य भी सत्यानाश कर सकता है? यह हमारी भूल है। मुझे मेरी अपनी वस्तु से राग है परन्तु

दूसरेकी वस्तुसे वैराग्य। आप बतलाइये कि इसमें क्या दोष है? आज कल झगड़ा होरहा है कि ब्राह्मण ही सन्यासी हो सकता है॥

परन्तु स्वामीजीने लिखा है कि जिसके मनमें वैराग्य उत्पन्न होजावे वही सन्यासी है कहा है कि जो मनुष्य सन्यासी होना चाहे वह एक पुष्प हाथमें लेकर किसी सन्यासीके पास जाकर कहे कि महाराज जिस प्रकार यह फूल अपनी शाखा से टूट चुका है उसी प्रकार मैंने संसारसे अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है। जिसके मनमें परमात्माकी अत्यन्त भक्ती हो जावे जो ब्रह्म निष्ठ होजावे, वही सन्यासका अधिकारी है। यहँ सब बातें महात्मा दयानन्दमें मिलती थीं। जैसा कि मैंने पहले कहा कि मुक्तिका हरएक अधिकारी है परन्तु मुक्ति साधनोंसे मिलती है जो साधन करेगा वह फल पाएगा। कूपमेंसे जल निकालना है यदि डोल टूटा हुआ है अथवा रस्सी निर्बल है तो जल नहीं निकलेगा जल निकालनेके लिये दृढ़ रस्सीकी आवश्यकता है मुक्तिके उपलब्ध करनेके लिये कठिन साधनों के सेवनकी आवश्यकता है। इन साधनोंका हम संसारमें रहते हुए भी पालन कर सकते हैं॥

अरस्तु कहता है कि जबतक मनुष्यको पूर्ण विश्वास अर्थात् पूर्ण निश्चय न हो वह मुक्तिका अधिकारी नहीं हो सकता पूर्ण निश्चयात्मक होनेके लिये ४ बातोंकी आवश्यकता है (१) परमात्माको हर समय स्मरण रक्खो, (२) मृत्युको एक पल भी न भूलो, (३) जिसने तुम्हारे साथ बुराईकी हो उस को भूल जाओ, (४) जिसके साथ तुमने कुछ उपकार किया

है उसको भी भूल जाओ।

महात्मा बुद्धने कहा है कि घृणासे घृणा दूर न होगी प्रत्युत प्रेमसे घृणा दूर होगी। यही बात योगीराज कृष्णने कही है और इसीको महर्षि दयानन्दने अपने जीवनमें घटाया है। एक बार एक पुरुषने स्वामीजीको क्रोधित हो गाली निकाल दी। स्वामीजी मुसकरा पड़े। वही पुरुष कुछ देर पश्चात् उनके चरणोंमें गिर पड़ा और कहा कि महाराज आप के धैर्यने मुझे मोहित कर लिया है। स्वामीजीने कहा कि भाई तुमने गाली दी मैंने नहीं ली गाली तुम्हारी तुम्हारे पास वापिस चली गई मुझे खेद किस बात का हो? आपने देखा किस प्रकार भलाई से घृणा दूर होती है। मैं आपको यह बतला रहा था कि सच्चे उपदेशक नहीं, ज़रा उपदेशक मंडली में बैठकर देखो क्या २ बातें करते हैं। अमुक स्थान गये अच्छा भोजन नहीं मिला, अमुक स्थान पर दूध प्राप्त नहीं हुआ। अच्छे भोजन और दूधके लिये यदि उपदेशक बनना था तो कुछ और काम कर लेते परन्तु दुःख तो यह है कि जब कोई स्थान न मिले तो उपदेशक बन जाते हैं। यह अपनी जगह सच्चे हैं। जब तक सच्चे उपदेशक तैयार न करोगे काम न चलेगा। चाहे आज तैयार करलो, चाहे १०० वर्षके पीछे, सफलता उसी समय होगी जब त्यागी उपदेशक काम करेंगे। जिस समय हम श्मशानमें जाते हैं न मित्रकी मित्रता न शत्रु की शत्रुता संग रहती है। मृत्युका दृश्य देखकर हम सम अवस्थामें आजाते हैं। जहां परमात्मा है वहां मृत्युका दृश्य है और जहां मृत्यु है वहां ही भय है। यह दो बातें तो हर समय आप

के सन्मुख रहनी चाहिये । इनही विचारोंको मनमें रखनेसे समस्त दुराचारोंसे बच सकते हैं और संसारके प्रलोभन उसे गिरा नहीं सकते, अन्यथा पग २ पर गिरावट विद्यमान है ॥

वेदोंने मनुष्य जगतके लिये ४ अवस्थाएं नियत की हैं जिनमें प्रत्येक मनुष्यको यह चारों पार करनी चाहियें । ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास । इनके मुकावलेमें धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष हैं । मोक्ष प्राप्तिकी अवस्थामें सन्यास या त्यागकी अवस्था है और यही प्रत्येककी अन्तिम इच्छा है, अनुभव बतलाता है कि जितना मनुष्य इस सृष्टिमें फंसता है, उतना ही प्रेम बढ़ता है, और उतना ही इसके वियोग से दुःख होता है। परन्तु ज्योंही मनुष्य सृष्टिसे निकलकर परमात्माकी सृष्टिमें जाता है, सन्यासी कहलाता है । वेदने बतलाया है कि यदि तुम संसारको प्रसन्नतासे छोड़ दोगे तो आराम पाओगे, और छोड़ना अवश्य है प्रसन्नता पूर्वक छोड़ो या खेद से । दयानन्दने अपनी इच्छासे जीवन छोड़ा । वह शान्तिपाठ करते और "तेरी इच्छा पूर्ण हो" कहते संसारसे गये । परन्तु इनके मुकावलेमें ऐसे भी महान पुरुष हो गुज़रे हैं जिन्होंने रोते धोते प्राण दिये । मनुष्य अधोगति को प्राप्त होगा या मोक्षको यह उसके अन्त समयसे पता लगता है ॥

जिनके जीवन नियमानुसार नहीं, उनकी मृत्यु भी नियम पूर्वक नहीं होसकती । स्वामी दयानन्द किस उदार भावके थे इसका प्रमाण आर्य्य समाज के नियमों से लगाया जा सकता है । स्वामीजीने एक नियम यह रक्खा है "संसार का उपकार करना आर्य्यसमाजका मुख्य उद्देश्य है" किसी

पुरुषने उनसे पूछा किस जाति का? उत्तर दिया कौन सी जाति और कौन सा देश? सारे संसारका। जो मनुष्य यह कहते हैं कि स्वामीजीने केवल भारतके लिये काम किया वह वास्तवमें ऋषिको उसके उच्च आसन से गिराते हैं। हां चूंकि वह इस देशमें उत्पन्न हुए थे इसलिये सबसे पूर्व उन्होंने अपने कामका लक्ष्य इसी ओर किया यदि वह जीवित रहते तो संसारको अपने कार्य्य का क्षेत्र बनाते।

जिन बातोंका स्वामीजीने प्रचार किया आज इसाई और मुसलमान उनको मान रहे हैं परन्तु आप इस समय सब से पीछे हैं। इसलिये आवश्यकता है कि आप कर्त्तव्य प्रायण होकर धर्म्मके नियमोंका पालन करें। क्षेत्र विद्यमान है केवल काम करने की आवश्यकता है। संसारमें गृहस्थी भूखे मर रहे हैं परन्तु नामधारी सन्यासी हाथियों पर मौज उड़ा रहे हैं। गृहस्थी के लिये धन महत्वका हेतु है परन्तु सन्यासीके लिये धन दुःखदायक है और इसको इसके आदर्श से पतित करने वाला है।

शास्त्रों ने ४ प्रकार के कर्म्म बतलाये हैं (१) वह कर्म्म जो न शुक्ल हों और न कृष्ण ऐसे कर्म मोक्ष का कारण होते हैं और सन्यासी अवस्थामें ही होसकते हैं। (२) वह शुक्ल कर्म्म जो दुर्व्यसनों के मर्दन के लिये किये जाते हैं यह ब्रह्मचर्य्य की अवस्था में ही होसकते हैं और गुरुकुल इनका केन्द्र स्थान है जहां गुरुके पास रहते हुए पापका लेश भी ब्रह्मचारी के पास नहीं आ सकता। (३) कृष्ण और शुक्ल कर्म्म गृहस्थियों के हैं जिनमें पुण्य और पाप मिला हुआ है [४] जिनके कर्म्म

न कृष्ण हैं और न शुक्ल। यह कर्म्म तो करते हैं परन्तु उनकी इच्छा फल की नहीं होती। ऐसे कर्म्म भी मुक्ती के देने वाले होते हैं। आज कलके वेदान्ती निष्काम कर्म्मकी बड़ी दुर्दशा करते हैं, परन्तु बुरे कर्म्म निष्काम नहीं होसकते। इस समय संसारमें कर्म्म और विज्ञान भिन्न २ काम कर रहे हैं। विज्ञानी लोग बड़े अन्वेषण करते हैं परन्तु चोरी और दुराचार के काम आते हैं। कारण क्या? केवल यह कि इस विज्ञान में वैदिक धर्म्मका अंश नहीं, जिस दिन कर्म्मके साथ वैदिक ज्ञान मिलेगा उस दिन बेड़ा पार होजावेगा। उस समय न पुलिस की आवश्यकता होगी न न्यायालयों की। प्राचीन कालकी एक कथा उपनिषदों में आती है। इसमें एक राजा यहां तक दावा करता है कि मेरे राज्य में न कोई दुराचारी और व्यभिचारी है और न कोई ऐसा पुरुष है जो हवन न करता हो। यह है कल्पतरु।

जहां भी परमात्माके भक्त हों वहां उपद्रव नहीं होसकते, परन्तु यह तब होसकता है जब धर्म्मके साथ विज्ञान मिला हुआ हो।

धर्म्म के तीन आवश्यक अंग।

भद्र पुरुषो और माताओ! आप की सेवामें कल निवेदन किया था कि कर्म्मका फल कर्त्ताके अनुकूल नहीं होता जो कर्म्म कि ज्ञान पूर्वक नहीं है। आज भी इसी क्रममें कहूंगा कि भारत वर्षकी दुर्दशाका क्या हाल है? उप-

निषद्‌में एक वाक्य आया है जिसका तात्पर्य्य यह है कि धर्म्मके तीन स्तम्भ हैं जिन के ऊपर धर्म्म की स्थिति है। (१) यज्ञ (२) पठन पाठन (३) दान, तीनों की अब परस्पर विरुद्ध दशा है।

पहला अंग—प्रथम धर्म्मकी व्यवस्थाका कौन विचार करे। भारतवासियोंमें ४ प्रकारके पुरुष हैं और वह सारे निर्बल। एक भाग बड़ा परिश्रमी है परन्तु पेट भर खानेको नहीं है। यदि कोई दिन भर परिश्रम करे और एक समय खानेको ना मिले तो क्या वह सुडौल हो सकता है? बिना खाना मिलनेके शरीर बन नहीं सकता। चमार और कुलीन ६,७ क्रोड़ बलहीन हैं यद्यपि परिश्रमी हैं परन्तु पेट भर खाने को नहीं मिलता। फिर दूसरे भागके पास धन है परन्तु पचाने की शक्ति नहीं है। एक राजाकी गाथा है उसने ५०००) पारितोषक इसलिये रक्खा हुआ था कि उसके पुत्रको कोई छटांक भर मलाई खिलादे परन्तु पाचक शक्ति न हो। तीसरे भागमें खाने की शक्ति है और धन भी है, परन्तु खाने और पचानेके लिये व्यायाम की आवश्यकता है खाते हैं खूब और धन भी है परन्तु खाकर तकिया लगा कर खूब बैठ रहते हैं। तकिया के समान स्वयम् भी तकिया ही बन जाते हैं। शरीर निर्बल और बेडौल हो जाता है। पकानेके लिये व्यायाम और परिश्रम की आवश्यकता हैं।

चौथा भाग खाता है धन है और पाचक शक्ति भी है, परन्तु मिलाप की शक्ति नहीं, वाहिष्णीशक्ति है परन्तु मिलाप की नहीं। इसी प्रकार दशा सब ओर से निर्बल हो रही है

अव धर्म्मका विचार कौन करे? धर्म्मसे ग्लानि हो जाती है। सारे लोग धर्म्मको विविध दशामें वर्णन करते हैं सुनने वालोंको भ्रम हो जाता है कि यह बात क्या है? सबने भिन्न२ उत्तर दिये हैं। उपनिषदोंको उठाओ। महाभारतसे पूर्व जो ग्रन्थ बने और सैंकड़ों ऋषि मुनी हुए एकही प्रकार का मत था। वेदोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र ४ प्रकार के धर्म्म हैं इनके विना और कोई नहीं। आज सब प्रकार के धर्म्म प्रचलित हो गये हैं, धर्म्म केवल एक ही हो सकता है शेष अधर्म्म हैं। धर्म्म जीवन है अधर्म्म मृत्यु। धर्म्म एक ही है और अधर्म्म अनेक है। जापानमें भी वालक माताके गर्भ में ९ मास ही रहता है और जीता है। परन्तु मृत्यु भिन्न प्रकार की है। यद्यपि जीवन एक प्रकार का है युवक अथवा वृद्ध भिन्न अवस्थाऐं हैं स्वास्थ्य एक प्रकार का है परन्तु रोग अवस्था अनेक प्रकार की है। धर्म्म स्वास्थ्य है परन्तु अधर्म्म रोग है स्वास्थ्य चित्त पुरुषको कोई नहीं पूछता परन्तु रोगीको सब ही पूछते हैं। दूध श्वेत होता है परन्तु कोई प्रश्न नहीं करता कि दूध क्यों श्वेत है। एक ही प्रकार की वस्तुमें प्रश्न नहीं उठाया जाता। निर्वलतामें कारण वर्णन किये जाते हैं। खुराक एक है और कुपथ्य अनेक। निरोगी रोटी मांग कर मिठाई भी लेने को तैयार है और चने भी चवा सकता है। रोगआलय में जब रोगी जाता है तो किसी को मुंगी किसी को चने का पानी और किसी को सागूदाना आदि वतलाते हैं। धर्म्म अरोग्यता है और अधर्म्म रोग है। मित्रता एक है पर शत्रुता अनेक है मित्रताका कारण कोई नहीं पूछता

परन्तु लड़ाई अथवा शत्रुताके कारण अवश्य पूछे जाते हैं। धर्म्म एक है किसी देशका हो। धर्म हर जगह मनुष्य मात्र का एक है। विचार पूर्वक काम नहीं किया अधर्म्म होगया। अधर्म्मोंसे भेद तथा लड़ाई होगी। जहां भूल होगी वहां अधर्म्म देख लो॥

दस लड़कों से प्रश्न पूछें, ५० से प्रश्न करें, ठीक उत्तर एक ही होगा। अशुद्ध उत्तर वालों के भिन्न २ उत्तर होंगे। ठीक उत्तर सचाई है और एक करना है, भूलका काम अनेक करना है। एक धर्म्मके आज भूलसे अनेक होगये हैं। धर्म्म की दशाका विचार नहीं किया अतः धर्म्मके विषयमें अधर्म्म की बुद्धि होगई, इसका कारण क्या है? विचार पूर्वक हमारा कर्म्म न रहा। और इसका परिणाम आज भोग रहे हैं। उपनिषद्में आया है "त्रयो धर्म्म स्कन्धाः" धर्मके तीन स्कन्ध हैं (१) यज्ञ करना। यज्ञ के अर्थ की अग्नि होत्र अश्वमेध तक व्याख्या है। जो कर्म मनुष्यको परमेश्वर तक मिलाता है उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञ करने वाले और सर्व साधारणमें समान लाभ हो। जैसे कि आपने अपने गृहमें कूप लगाया है पानी दूसरेको नहीं भरने देते आप के अधिकारमें है इसका फल आपको है। एक कूप ऐसे स्थान पर लगाया जहां पर सारे लोगोंको कूप न होनेसे कष्ट होता था। उससे आपको विशेष लाभ नहीं हैं जितना कि सर्व साधारण को है इतना ही आप को है। यदि उस कूपका स्वामी अभिमान करे तो लोग कहेंगे कि यदि यह सब के लिये न था तो घरमें ही क्यों न लगवालिया आज इस कामको करने वाले बहुत कम हैं

जब संसार में इन पुरुषों की संख्या बढ़ती है तो लोग सुख के मार्ग पर चलते हैं अन्यथा दूसरी दशामें दुःखके मार्ग पर चलते हैं। एक रागी किसी कमिश्नर साहिबके पास गया और स्टेशनके विषय में कविता की। साहिब सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और पारितोषक के लिये कहा कि परसों देंगे। जब वह परसों गया और इनाम के लिये याचना की तो साहिब बहादुर ने कहा कि इनाम कैसे दें। एक प्रकार की स्वर से आपने हमें प्रसन्न किया हमने भी परसों की प्रतिज्ञा देकर आप को प्रसन्न कर दिया कोई सर्व साधारणके लाभ की बात बतलाओ तो इनाम मिलेगा किसी ने कहा है:—

अकड़ ऐंठ अभिमान में गए बहुत दिन बीत।
आओ रलमिल बैठिये जो बढ़े परस्पर प्रीत॥

दूसरा अंग—अध्ययन अर्थात् विद्याका पढ़ना और पढ़ाना। इस क्रममें माताओं और बहनोंको तो पृथक कर दिया गया है, परन्तु मैना और तोतेको पिंजरे में बन्द करके पढ़ाया। क्या कन्याओंको बिना पढ़ाए रख कर सुख पा सकोगे? क्या यह सारा नाटक इस लिये रचा गया है कि मालूम होजावे कि कन्याएं क्यों अशिक्षित हैं। गुड़ियोंकी रीति इसलिये प्रचलित हुई कि माताओंने एक प्रकार नाटक करके दिखला दिया कि जिन को विवाह करते हो वह तो ऐसी निर्जीव हैं जैसे कि गुड़ियां॥ किसी कन्या के सामने एक शब्द कह दो जेल तक पहुंचादें परन्तु विवाह के समय पर

सिठनियां और अश्लील बातें कहती हैं। इसी प्रकार से संस्कार मलीन होते चले गये॥

मातृमान् पितृ मान् आचर्य्य मान पुरुषो वेद

इस में बतलाया है कि माताको बालक को इसप्रकार शिक्षा देनी चाहिये। माता गोद में खिलाती हुई बच्चे के लिये इतनी विद्या उपार्जन करती है जितनी कि पिता वर्ष में भी नहीं करसकता। स्वामी विरजानन्द जी के पास जिस प्रकार दयानन्द जी रहे वहां और भी कई गुरु भाई (विद्यार्थी) रहे, परन्तु विरजानन्द जी उन सबको दयानन्द जैसा न बना सके, और उनको भी न बना सकते यदि माताके गर्भमें दयानन्द जी सुडौल न बन जाते। जितना माता और पिताका प्रभाव अपनी सन्तान पर पड़ता है उतना आचार्य्यका कभी नहीं होसकता। माता पिताके विचारोंका परिणाम बच्चा होता है। कभी २ तीर मारने वाले चूक जाते हैं परन्तु बच्चे भूल से लक्ष्य पर मार देते हैं॥

यद्यपि ब्रह्मचर्य्यका समय न था, विचार माता और पिताके स्नेह और प्रेमके थे, खाना ठीक रहा जन्म अच्छा होगया। दो पुरुष परस्पर गालीं निकालते हैं परन्तु बुरे शब्दोंको सुन कर सबका आनन्द जाता रहता है। जब दो पुरुषोंके गाली देनेसे सुनने वालोंके अन्तःकरण मलीन होते हैं भला माताके गर्भमें पिताके क्रोध और लड़ाईसे क्यों न बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता होगा, और क्यों न उसकी बुद्धि भ्रष्ट होगी। जब तक माताओंकी शिक्षा न होगी सन्तान मूर्ख रहेगी और यह सारे काम अधूरे और अपूर्ण पड़े रहेंगे।

अरस्तु का कथन है कि यदि किसी देश की दशा को मालूम करना चाहो तो धन, सड़कों, स्कूलों, उद्यानों मकानों, न्यायालयों आदि के हालात पूछने से मालूम नहीं होंगे, प्रत्युत उस देश की स्त्रियों की अवस्था पूछने से वास्तविक दशा प्रगट होसकती है कि यहां के लोग विद्वान् सदाचारी हैं, अथवा भीरू कायर और गिरे हुए प्रतीत होते हैं। हमने अपनी भूल से स्त्रियों को विद्या से वञ्चित रक्खा और उस का फल भोग रहे हैं॥

तीसरा अंग—दान—मनुष्य के स्वभाव में है कि देता रहे। इस स्थान पर ५० रोटियां हैं, और २५ पुरुष हैं यदि बांटी जावेंगी तो दो रोटी प्रति पुरुष को मिलेंगी, १० पुरुष यदि ५-५ से हिसाब से ले लेवें, तो शेष भूखे रह जावेंगे। इसी प्रकार भोजन तथा वस्त्रों की दशा है और यही हमारे अन्याय का फल हो रहा है॥

दान की प्रणाली में बड़ी गड़बड़ है। हम दान करते हैं, परन्तु हमारी हानि होती है। जो कहते हैं कि भारत में अथवा हमारे पास धन है यह ठीक नहीं। कहते हैं कि अमरीका में जहां कहीं पुष्प फैंको वह लखपति पर पड़ेगा। एक कृषक ने अपने क्षेत्र में १ मन बीज डाला १५ मन कनक पैदा हुई। '१ मन लगान के लिये, दो मन कपड़ा के लिये, ६ मन खानेके लिये और १ मन आगामी वर्षके लिये गढ़ेमें सुरक्षित रखदी। समय आया जो उसने बीजके लिये रक्खी हुई थी उसको भी खा गया। उसे चाहिये था कि परिश्रम करता और खाता। परन्तु बीजको कदापि न व्यय करता परन्तु व्यसनी

है भड़ोली अथवा घड़ेको उखाड़ता है और अन्य वस्तुओंके खरीदनेके लिये उसे व्यय कर देता है। क्या उसका यह कर्म्म ज्ञानपूर्वक है? बीज न होनेकी दशामें वह क्या करेगा? उस को कष्ट सहन करना पड़ेगा। क्योंकि कृषक होकर बीजको नष्ट कर रहा है। भारतवासी बीजके धनको भी व्यर्थ गंवा रहे हैं। मित्रो ईखके खेतको कृषक बाड़ लगाता है परन्तु एक कनाल अलग विना बाड़के छोड़ देता है। क्योंकि उसको विश्वास है कि विना बाड़ वाला कमाद अगामी वर्षके बीजके लिये रक्खा हुआ है कौन ऐसा निर्दई होगा जो कि उस क्षेत्र को उखाड़ अथवा हानि पहुंचा दे। इसीलिये गिर्द बाड़ लगाने की आवश्यकता भी नहीं समझता। सज्जन! भारतवर्षके पास यद्यपि धन नहीं है परन्तु जो है उसका तो शुद्ध सेवन करो। ठीक जिस प्रकार बीजके व्यय कर देनेकी दशामें कृषकको दुःख और कष्ट उठाना पड़ता है इसी प्रकारसे तुम भी दुःख उठाओगे। ईसाई लोग दुर्भिक्षकी दशामें आपके भाइयोंको रोटी ही तो दिखलाकर ले जाते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा है कि दान देश, काल और पात्रकी परीक्षा करके दो। धन वालो! अगर दान करते हो तो पहले देश की परीक्षा करो यदि जल का कष्ट होवे तो तड़ाग, कूप बावली लगा कर दूर करो, यदि रोगसे देश पीड़ित है तो औषधालय खोल कर अपने कर्त्तव्य का पालन करो, और यदि देशमें विद्या की न्यूनता है तो विद्यालय और पाठशालायें खोलो। परन्तु सत्य कहा है कि "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" हमने दानका उल्टा ही अर्थ समझा है हमने यही मान लिया है कि गया, हरिद्वार आदि

तीर्थों पर पंडोंको दान देदो। कालका आशय यह था कि शीत उष्ण तथा ऋतु अनुसार दान करो, दुर्भिक्ष आदिमें निर्धन और अनाथोंकी सहायता करो। अब उसके स्थानमें एकादशी, पूर्णमाशी पर दान किया जाता है। एकादशीका आशय तो यह था कि प्रतिदिन खाने वाला एक दिन न खावे तो आरोग्यता हो जाती है। भारतवर्षमें यह हाल है कि अजीर्ण है वैद्यके पास जाते हैं चूर्ण लेते हैं पाचकशक्तिको ठीक करनेके लिये निराहार नहीं रहते, हैज़ा और अजीर्ण ख़रीद लेते हैं। शिमलाके लोग यदि ११वें दिन मानो दो हज़ार आदमी नहीं खाते तो ४ हज़ार पुरुषोंका भोजन दो बार निराहार करनेसे १ मासमें बच जाता है, और इसकी आयसे कई निर्धन पल सकते हैं, अथवा कई विद्याहीन पढ़ सकते हैं, और इसी प्रकारसे ब्रह्मचारी और विद्यार्थी पढ़ जावेंगे, और आप लोगोंका स्वास्थ्य भी बन जावेगा। जिस समय देशकी यह दशा थी उस समय मांगनेकी आवश्यकता न थी। आज कल ठग्गी अधिक है। निराहार के स्थान में आज कल एकादशीको फलाहार और १ सेर पेड़े खाये जाते हैं और दूसरे दिन मृदु भोजन खाया जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि एक तो उल्टा अधिक खा जाते हैं, दूसरे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसलिये लाभके स्थान में हानी हो रही है।

पात्र—पात्र के अर्थ अधिकारीके हैं। जिसके माता और पिता जीवित न रहें वह अनाथ हो जाते हैं उनका बोझ जनता पर है। जो विधवायें हो जावें उनकी रक्षा करें। विद्यार्थियों और ब्रह्मचारियोंको विद्यादान करें। भारतवासी

इसी प्रकारके मनुष्य धर्म्मका पालन किया करते थे। परन्तु अब गयाके पण्डे, मथुरा और हरिद्वारके चौबे १७,००० के लगभग हैं। इनका काम है भंगका पीना खाना और गंगाके तट पर जा कर शौच हो आना अथवा लंठबाज़ी करना और लड़ना। इस रूपमें दान लेने वाला और दानी दोनों ही पापी हैं। प्रश्न यह है कि देने वाला क्यों पापी है? लोग बंदूकोंसे मृग मारते हैं यदि मैं किसी को बंदूक दूं और गोली न दूं तो वह बंदूक नहीं चल सकती। मृग तब ही मरेगा जब बारूद भरा हो और गोली भी हो। बारूदका काम तो हम ने धनसे लिया गोली का काम बुरे कामसे उन्होंने किया। भला यदि सारे सान्यासी आदि विद्वान होते तो भारतवर्ष की यह दुर्दशा होती? जिस में ५२ लाख के लगभग साधु हों। यदि दानकी प्रणाली ठीक हो जावे तो एक ही वर्षमें भारतवर्षकी अवस्थाका परिवर्तन हो कर सारे काम ठीक हो जावें। अम्बाला में मेरे पांवमें ठोकर लगी, अब तक पीड़ा है और नंगे पांव कई दिनों से चलना पड़ता है। यह अपने विपरीत कामों का ही तो परिणाम है। आंखें खोल कर संभल कर चलता तो आज यह दशा न होती। सज्जनो! यही अवस्था दान की है। धन कमा कर उल्टी ओर लगाया है आज कल भी तो वैसे ही भुक्त रहे हैं। अब तो पंडों के लिये ही २५। तोला का इतर गाज़ीपुर वाला काम आता है गृहस्थी थोड़ा मोल ले सकते हैं? यदि सोच विचार कर दान करते तो दान लेने वालों को भी होश होती कि किस प्रकार से पुरुष भूषण आदि बेचकर भी और ऋण उठा कर भी दान करते

हैं। वह अपनी सन्तानको पढ़ाते और धर्म्म उपदेश करते। इनको धनकी चिन्ता न रहती। पढ़ना धन कमानेके लिये है और जब दान मिल जाता है तो फिर इसीलिये तो पढ़ते नहीं। परिणाम यह है कि अविद्या और विषयोंमें पड़े भूल पर भूल हो गई। नीतिकार कहते हैं कि मनुष्यो! धन दान दो बुद्धिमानों और विद्वानों के लिये, इस पर एक दृष्टान्त देता हूं। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें तालावों और समुद्रों से जल उड़ता है सूर्य्यकी किरणोंसे तालाव हौज़, नदियों का जल न्यून रह जाता है, ऊपर जाकर वायुके संबंध से जल बन कर नीचे गिरता है। पर्वतोंमें हिम तराइयों को ठंडा, वन उपवनको हरा भरा कर दिया, नदियोंको बहाया गर्मी बुझाई और फिर उन्हीं नदियों तालावों और समुद्रोंको भी भर दिया। अर्थात् जहां से पानी उड़ाकर न्यून किया था उनको भी भरपूर्ण कर दिया। इसी प्रकारसे शास्त्रकी आज्ञा है कि दान करो। एक समयका वर्णन है कि एक मालीने गुलावके पुष्प उद्यानमें लगाये हुए थे बुलबुल उनको नोचती थी। मालीने जाल बिछाया जिसमें बुलबुल फंस गई जिसको मालीने पिंजरेमें बन्द करके लटका दिया। बुलबुल इस प्रकार कहने लगी—एक वनमें चार पांच पुरुष जारहे थे इतनेमें एक तीतर बोला, एक उनमेंसे जो पहलवान था वह तीतरके शब्द सुनकर बोला कि यह कहता है "दंड, कुश्ती और कसरत" दूसरा मुसलमान था उसने कहा यह कहता है "सुवहान तेरी कुदरत" तीसरा जो वैश्य था उसने कहा यह कहता है "सोंठ अजवायन-अदरक" चौथा जो वैरागी था उसने कहा यह

कहता है "सीताराम और जसरथ" प्रत्येकने अपने २ विचार अनुसार तीतरके शब्दकी व्याख्याकी। इससे मालीके मनमें यह बात जच गई उसने समझा कि बुलबुल उसे कह रही है कि ए मनुष्य! तुझको तो ईश्वरने मनुष्य बनाया है मैं भूल कर सकती हूं अतः क्षमा मांगती हूं क्षमा करना मनुष्यका धर्म्म है तू मेरी स्वतन्त्रताको क्यों रोकता है? मालीने पिंजरे से उसको छोड़ दिया। बुलबुल वृक्ष पर जा बैठी और बोलने लगी कि माली! परमात्मा दयावान है और करुणानिधान है इसी प्रकार तू। जिस वृक्षकी शाखा पर मैं बैठी हूं उसको खोद, वहां स्वर्ण मुद्रिका का घड़ा दबा हुआ है। जब मालीने खोदा, उसमेंसे स्वर्ण मुद्रिका निकलीं, वह उनको देखकर शोकातुर हो बैठ गया, जैसे रोटी खाते समय तृणकी ओर जों कहीं दांतोंमें घुस गया है जिह्वाकी दशा होती है कि वह वहीं बार २ जाती और काम करती है यही अवस्था संशयात्मक मनुष्य की होजाती है। सन्देह और चिन्ता उसको इसलिये हुई कि सामनेकी वस्तु अर्थात् जालको तो नहीं देखा परन्तु आश्चर्य है कि भूमिके अंदर दबी हुई वस्तुको देख लिया है। बुलबुलने कहा कि जब मृत्यु आती है तो साम्हने पड़ी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

भारतवर्षमें ऋषि आदि जिनकी आज प्रशंसा की जाती है सब ही विद्यमान थे। भारत सन्तानने दुःख उठाना था विपरीत कार्य करने लगे। यदि धर्म्मका सुख चाहते हो तो यज्ञ की विद्या सबको सिखाओ, इसी प्रकार उसको समझो जैसा कि वास्तवमें है। जब मैं हुश्यारपुरमें होता था तो दूजके चांदको

सब देखते और एक दूसरेको अशीर्वाद देते थे, वस्त्रका टुकड़ा फाड़ते थे। परन्तु पूर्णमाशीके दिन कोई ऐसा नहीं करता क्या कारण है? कारण यह था कि यह शिक्षा थी कि जो निर्बल शक्ति है, उस पर विचार करो। परन्तु आज अवस्था और है। वही नियम पल्टा खा गये ९१ में ९ बांई और इकाई दहनी ओर है उलटनेसे अर्थात् अभिमानसे १९ बन जाते हैं। इसी प्रकार मित्रो! अभिमान रहित होकर निर्बलों अछूतों आदि की सहायता करो, नहीं तो पीछे पछताना होगा और दुःख भोगना पड़ेगा। आज अवस्था उल्टी है प्रत्येक अपनी चितामें निमग्न है। चमार साधु कुछ पढ़ गये हैं उनमेंसे मुझे कई मिले, वह आर्य्यसमाजका उपदेश सुनने लग गये हैं उनमें से एक कहने लगा कि हम चमार नहीं, वास्तवमें चारमार हैं हमारे पूर्वजोंने चार शत्रुओं अर्थात् काम क्रोध लोभ और मोह को जीत लिया था, परन्तु अहंकारको वशमें नहीं किया था इसलिये हम चार मार अर्थात् चमार प्रसिद्ध होगये। यह है संसारकी परिवर्तनीका झुकाव। आज सारे विचारमें पढ़ गये हैं और परिवर्तन हो रहा है अतः अब आप लोगोंका कर्त्तव्य है कि स्वयमेव सावधान होकर यज्ञ और दानकी महमाको समझें, इनका ठीक और ज्ञानपूर्वक सेवन करें, धर्म्म स्वयम फल देगा, सब संसारमें सुख होगा, और आपकी कीर्ति होगी, परमात्मा आप लोगोंको बल दें।

आर्य्यसमाजको चेतावनी।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदम हमनृतात्सत्यमुपैमि॥

सावधान होनेकी आवश्यकता-भद्रपुरुषो और माताओ! आप दो दिनसे महात्माओंके उपदेश श्रवण कर रहे हैं। उत्तमसे उत्तम उपदेश जिनसे आपका जीवन पल्टा खाये, आपको दिये जारहे हैं, परन्तु व्यवस्था इसमें यह है कि जब असावधानीसे कहीं पांव पड़ जावे तो पांव फिसल जाता है। यही अवस्था जातियों और मतोंकी है। इतिहास बतलाता है कि बड़े २ सम्प्रदायोंके प्रवर्तकोंने जो शिक्षा दी, उनके पीछे उनके अनुयाइयोंके पग उस मार्गसे फिसल गये। महाभारतके पीछे सबसे पूर्व महात्मा बुद्धने उपदेश आरंभ किया। उन्होंने देखा कि चहुं ओर पाप फैला हुआहै व ड्रेवंगसे जहां औरकईप्रकारके उपदेशकिये अहिंसा के प्रचारपर सबसे अधिक बल दिया। परन्तु इतिहास बतलाता है कि जब इसके अनुयाइयोंका संबंध इसके उपदेशोंके साथ न रहा तो उसका प्रयत्न शिथिल होगया जैसे इंजन के साथ गाड़ीका सम्बन्ध छूट जानेसे गाड़ी चल नहीं सकती इसी प्रकार प्रवर्तकका सम्बन्ध न रहनेसे अर्थात् उसकी शिक्षाके शिथिल होनेसे उसके मतावलम्बियोंमें वह साहस नहीं रहता जिसका वह प्रचार करता था। आप ईसा और मुहम्मदको लेलें। जबतक इन महात्माओंके अनुयायीयोंका संबंध उनकी शिक्षाके साथ रहा, उनमें आत्मत्वका प्रचार रहा, परन्तु जब संबंध छूटा, कबर परस्ती पीर परस्ती आरम्भ होगई।

संसारमें घोर अन्धकार देखकर वर्तमान कालमें महानुभाव ऋषि दयानंदने फिर उपदेश आरम्भ किया। आप इतिहास को संन्मुख रखें और विचार कर देखें, कि जिन त्रुटियोंको दयानंदने दूर करनेका प्रयत्न किया था,क्या वह दूर होगई हैं? क्या वही अब हममें विद्यमान् नहीं हैं ? जिस समय आपने खेत को बोया था, घाससे साफ कर दिया था परन्तु कनक के साथ फिर घास उग आता है। इसी प्रकार कामके साथ त्रुटियां आती ही रहती हैं, परन्तु काम करने वालोंका यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह इन त्रुटियोंको दूर करें, अन्यथा भय है। इस देशके निवासी इतने भाग्यवान नहीं है कि प्रति २० वर्ष के पीछे जब त्रुटियां आने लगें कोई महात्मा उत्पन्न होजावे जो उन त्रुटियों को दूर करदे, जो देश ऐसा होता है वह शीघ्र उन्नति करता है॥

न्यूनताएं क्या हैं ? कपिल कहते हैं वेदों का अर्थ उनको प्रतीत होगा जो सृष्टिके नियमको देखेंगे। अंग्रेज़ी के विद्वान् वेदोंके ज्ञानसे अभिज्ञ नहीं, परन्तु संस्कृतके पंडित सृष्टिक्रम को भली प्रकार जानते हैं। इस समय आवश्यकता है उनकी जो दोनोंको मिलादें। परन्तु हमारे दुर्भाग्यके कारण दोनों मिलते नहीं। जिस प्रकार दो दीपक मिलनेसे छाया उड़ जाती है इसी प्रकार दो विद्वानोंके मिलने से भ्रम दूर हो जाता है। संभव है कि भविष्यमें ऐसा हो जावे। परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या हम धीरे २ ऋषिके उद्देश्यसे पीछे तो नहीं हट रहे?। कई ऐसे विचार मनुष्यमें होते हैं जो सदा उसको दुःख देते रहते हैं॥

मेरा यह विचार है कि हम ऋषिके उद्देश्यसे परे हट रहे हैं। स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है यदि वह सारा हमारी समझमें नहीं आता, तो यह हमारी भूल है। सत्यार्थ प्रकाशमें लिखा है कि परमात्माको छोड़ देने से संसारमें कष्ट होरहा हैं यह हमारे सन्मुख सर्वदा प्रत्यक्ष बात है कि एक ओर जलकी अधिकता खेतोंका नाश कर रही है, परन्तु दूसरी ओर जल की कमी अनाज आदिको उत्पन्न होने नहीं देती। खेतोंको परमात्माने नहीं सींचना, उसने नियम बतला दिया। इसी प्रकार ऋषिनेसिद्धकरदिया कि अंग्रेजी विद्वानोंका यह भ्रमहै कि प्राचीन आर्य्य अनेक परमेश्वरकी पूजा करते थे। बतलाया कि अनेक नाम परमात्माके गुणोंके वाची है। ऋषिने दरशाया कि केवल पुस्तकोंको पढ़ लेनेको ही शिक्षा नहीं कहते। ऋषिने सत्यार्थ प्रकाशमें लिखा है और अपने जीवनसे सिद्ध किया कि जिन दिनोंमें अष्टाध्यायी प्रचलित थी उन दिनोंमें ऋषि उत्पन्न होते थे ऋषि आकाशसे उत्पन्न नहीं होते, प्रत्युत बनायेजाते हैं। जब वह उत्पन्न होते थे संसारमें सुख था। पाणिनी जी महाराजने अष्टाध्यायीके सूत्रोंका निर्माण किया, परन्तु जब पातञ्जलीजी महाराज हुए उन्होंने रही सही न्यूनताको दूर कर दिया। उन्होंने अपनी गद्दी जमानेके लिये पाणिनीके सूत्रोंको नष्ट नहीं किया इसके पश्चात वार्तिककारने महाभाष्य में उनकी व्याख्या कर दी। परन्तु यह प्रथा तब तक रही जब तक आर्य्य ग्रन्थोंका प्रचार रहा, जब उनके प्रचार में शिथिलता आई। भट्टो जी दीक्षित ने पहले सारे काम पर पानी फेर दिया। मनुष्यों और ऋषियोंमें यह भेद है। ऋषि दयानन्द

ने सत्यार्थ प्रकाशके दूसरे समुल्लासमें शिक्षाका विधान किया है, जिन बातोंको हम नहीं कर सकते न करें, जैसे कन्या गुरुकुल, परन्तु जिन बातोंको कर सकते हैं शोक है कि उनको भी नहीं करते। जैसे जिन पुस्तकोंको पढ़ानेके लिये स्वामीजी ने रोका है, हम उनको भी नहीं छोड़ते। मुझे एक सनातनी पंडितने उलाहना दिया कि स्वामी दयानंदने तो लघुकौमुदी बन्द की थी परन्तु फिर लघुकौमुदीके बिना गुरुकुल क्यों न चला लिया? मैं इसका उत्तर क्या दे सकता था, जब कि हमारे गुरुकुलों में कौमुदी पढ़ाई जाती है, लज्जित होना पड़ा। स्कूलों तक में अष्टाध्यायी प्रचलित हो सकती है यदि हम मेल मिलाप करें। जो कुच्छ हम चाहते हैं सरकार वही करने को उद्यत है, यदि हम मिलकर करें परन्तु करे कौन? देखा अभी चालीस वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए हम ऋषि के उद्देश्य से कितने दूर चले गये हैं॥

दूसरी न्यूनता—दूसरी त्रुटी जो मैं आपको बतलाना चाहता हूं वह यह है कि जहां जाएं वहां यह पूछा जाता है कि क्यों जी गीता पर आर्य्यमुनि का भाष्य लें या राजाराम का? अब क्या उत्तर दें? दोनों ही आर्य्य पण्डित हैं। बात तो सारी पैसों की है। यदि दोनों विचार कर बनाते और पैसे आधे आधे बांट लेते तो कोई बुराई न होती॥

तीसरी न्यूनता—गुरुकुल वृन्दावन और गुरुकुल कांगड़ी बड़े महत्वके विद्यालय हैं परन्तु अब जो उनकी शाखाएं खोलने पर बल दिया जा रहा है यह न खुलनी चाहियें। अभी इन गुरुकुलोंमें बहुत अधूरापन है। सारा वर्ष इनके

सँचालकोंका रुपया मांगनेमें व्यतीत होजाता है; फिर भी इन का व्यय नहीं चलता। ऐसी अवस्थाओंमें शाखाओंका खुलना सारी गुरुकुल प्रणालीको धक्का लगायगा। शाखाएं तब खोली जावें कि वह स्वयमेव उनको चला सकें। प्रश्न होगा कि शिक्षाको कैसे फैलाया जावे? इसके लिये यह काम करना चाहिये कि जो विद्यार्थी मारे २ फिरते हैं उनकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं परन्तु वह निपुण हैं, आर्य्यसमाजसे उनकी सहानुभूति है, परन्तु पौराणिक पण्डितोंसे विद्याध्ययनके कारण उनके विचार पल्टा खा जाते हैं ऐसे विद्यार्थियोंकी शिक्षाका काम आर्य्यसमाजोंको अपने हाथमें लेना चाहिये। आर्य्यसमाजोंकी ओरसे सदैव नोटिस निकलता है कि एक उपदेशककी आवश्यकता है, विवश हो पौराणिक विचारके शास्त्री फ़लको ३०-४०) मासिक पर रख लेते हैं और वह भी इस भावसे कि चलो ३०-४०) आर्य्यसमाजसे मुफ्त मिलता है नौकरी कर लेता है। आर्य्यसमाजें समझती हैं कि सस्ता उपदेशक मिल गया। अब उसको लड़के पढ़ानेके काम पर लगाया जाता है और फिर शिकायत की जाती है कि आर्य्य स्कूलमें पढ़ानेसे लड़के आर्य्य समाजी नहीं बनते, भला सोचो जब अध्यापक ही आर्य्यसमाजी नहीं तो लड़के क्या आर्य्य-समाजी बनेंगे? ऐसे विद्यार्थियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध अपने हाथमें लेकर आर्य्यसमाजोंको इन पर आठ वर्ष पर्यन्त पढ़ाई करनी चाहिये।

८ वर्षके पीछे वह अच्छे आर्य्य उपदेशक बनकर सहस्रोंकी संख्यामें फैल जावेंगे, यदि विद्या और प्रचारको

जे सत्यार्थ चाहते हो तो इस प्रणालीको ग्रहण करो ।

किया एक और न्यूनता—चमार जातियोंकी छोटी २ जो गुरुकुशालायें खुलती हैं यह भी आपकी उदारताका फल है। परन्तु इनसे जिस लाभकी आशा थी, वह अभी नहीं हुआ। थोड़े विचारसे सब काम ठीक हो सकता है, अन्तर यह है कि सारी पाठशालाओंमें भिन्न २ प्रणाली प्रचलित है यदि इस पर विचार करके उनकी पाठ विधि एक कर दी जावे तो उससे जहां उनके विचार विस्तीर्ण होंगे, वहां एक पाठशालाका विद्यार्थी दूसरी पाठशालामें विना रोक टोक प्रविष्ट होसकेगा। तीन जिलोंमें ३० विद्यार्थी अवश्य होने चाहियें। यह काम थोड़ा है इस पर धन भी कम व्यय होता है, परन्तु लाभ अधिक होगा। उसके साथ ही एक उपदेशक भी निरीक्षक इन पर नियत कर देना चाहिये जो उनकी परीक्षा ले और उनमें प्रचार करे। परन्तु उपदेशक ऐसा होना चाहिये जिसको उन के साथ विशेष स्नेह हो। इस समय कामका आरम्भ है यदि यत्न करेंगे तो सब काम ठीक हो जायेगा। यह बच्चे बुद्धिमान अधिक होते हैं। सब ओर से द्वार खोल दो नहीं मालूम किस ओर से योगी उत्पन्न हो जायंगे। लायलपुरके ज़िलेकी प्रायः सरकारको अन्य ज़िलोंकी अपेक्षा अधिक आय होती है कारण यह कि वहां की भूमि वर्षों तक ऊषर रहनेसे उसकी उपज शक्ति बढ़ चुकी है। यह छोटी जातियां भी ऊषर भूमिके समान हैं, इन पर केवल १० वर्ष आप व्यय करके देखलें कि अन्य जातियोंकी अपेक्षा इनसे कितना लाभ होता है। गुरुकुल कांगड़ीका व्यय एक लाख रुपया वार्षिक है इसके लग

भग गुरुकुल वृन्दावनका, इतने भारी व्ययमेंसे क्या दो हज़ार रुपया अछूत बालकोंकी शिक्षाके लिये नहीं निकाल सकते? धनवानोंके साथ सारा संसार प्रेम करता है, तुम निर्धनोंके साथ प्रेम करो ताकि तुम्हारा भला हो। गुरुकुल वृन्दावन और गुरुकुल कांगड़ीके वार्षिक उत्सव पर बड़े २ दानी अपनी उदारताका प्रमाण देते हैं कोई भूमि देता है कोई ब्रह्मचारियोंके दूधका ठेका लेता है परन्तु है कोई शूरवीर, जिसके मनमें इन बालकोंके लिये दयाका भाव उत्पन्न हो और जो यह कहे कि मैं अछूत बालकोंके लिये इतनी भूमि अथवा रुपया देता हूं परन्तु करे कौन? जब कि उपदेशकोंके मन ही शुद्ध नहीं। ईसाई धर्म्म का प्रचार बड़े २ पादरी करते हैं जिनका जीवन आदर्श जीवन पेश किया जासकता है। वह स्वयम रेलवे स्टेशनों पर जाकर पुस्तकें वितर्ण करतेहैं परन्तु किसी आर्य्य उपदेशकको कहो और देखो वह क्या उत्तर देता है? हम लोग इसमें अपनी मानहानि समझते हैं। हमने तो अपनी आजीविका और फ़ैशनके लिये उपदेशकका काम आरंभ कर रक्खाहै,परन्तु याद रक्खो सुधार नहीं होगा, जब तक उपदेशकोंके भाव दुष्ट रहेंगे, उपदेशकोंके जीवन के साथ जनताका जीवन है। यदि हम लोगोंमें ढीलापन है तो सुधारनहीं होसकता। जिस प्रकार माताका प्यार अधिकतर छोटे बच्चेके साथ होताहै उसी प्रकार पवित्र जीवनकी आवाज़ कंगालों के लिये अधिक उठती है। जितने भी महान् पुरुष हुए हैं, उन्होंने छोटी जातियोंको उठानेका यत्नकिया है,परन्तु यहां परदा उलटा है। परमात्मा तुम्हारा भला नहीं कर सकते, यदि भला चाहते हो, तो अछूत जातियों को गले लगाओ यह जातिका

तुम्हारा अंग बन जावेंगी। और तुम्हारी जाति की सारी निर्बलता दूर होजावेगी। ऋषि दयानन्द बंबई में आर्य्य समाज के नियम बनाने लगे, तो हाथ में लेखनी ले कर कुछ विचार कर रहे थे कि एक भद्र पुरुष आये और पूछा कि महाराज क्या सोच रहे हैं। स्वामीजीने उत्तर दिया कि आर्य्य समाज के नियम। वह महाशय बोले कि इस में सोच कैसी ? लिखदो "कि अपने देश तथा जाति का भला करना आर्य्य समाजका नियम है" स्वामीजी ने क्रोधित हो कहा, जाओ तुम इन बातों को नहीं सोच सकते। और बड़े गूढ़ विचार के पश्चात लिख दिया कि "संसारका उपकार करना आर्य्य समाजका मुख्य उद्देश है" भद्र पुरुषो ! सोचो क्या यह अछूत जातियां संसारमें नहीं हैं ? यदि हैं तो फिर उनके उठानेमें क्यों देर कर रहे हो॥

आनन्द संग्रह ।

दूसरा भाग

स्वामीजी के नये उपदेश ।

---o---
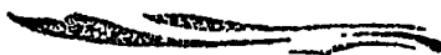
विवेक और वैराग्य ।

सज्जनो! संसारकी अवस्था देखनेमें कुछ और है, परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही है । नैय्यायिकोंका सिद्धान्त है कि संसार एक चक्रकी तरह घूमताहै। जिस प्रकार चक्रके सिरेका कुछ पता नहीं लगता, दो मिन्टमें जो सिरा ऊपर होता है वह नीचे होजाता है। इसी बातको फ़ारसीमें "हर कमाले राज़वाले" कहागया है, परन्तु साधारण लोग इसको नहीं समझते। कभी भारतका बहुत उदय था, जिसका उदय हुआ उसका अस्त होताहै। अब कोई पूछे कि अस्त क्यों हुआ तो इसका उत्तर क्या दिया जासकता है । किसी का पिता मरगया था लोग शोक प्रगट करने आए और कारण पूछने लगे कि क्यों मरा, कैसे मरा । पुरुष विचारशील था, उत्तर दिया, जो उत्पन्न हुआ उसने एक दिन मरना था, सो मरगया लोग अप्रसन्न होजाते हैं । यदि वही कहदे कि दो दिन ज्वर आया था मरगया तो उनको संतोष आजाता है और फिर आगे प्रश्न नहीं होता। संसार तो कारण पूछता है। इसी बातको महात्मा भर्तृहरिजी कहते हैं कि जिनका विवेक भ्रष्ट

होजाता है वे स्वयं भ्रष्ट होजाते हैं। जो मनुष्य व जाति विवेक युक्त होती है वह संसारके सुखोंसे लेकर परमेश्वर तकको प्राप्त करेगी, परन्तु जिसका विवेक भ्रष्ट होजायगा उसको परमात्माकी प्राप्ति तो क्या संसारके सुख भी नहीं मिलते।

विवेक क्या है ?

आप पूछेंगे विवेक क्या है ? आपने सिपाहियोंको चांदमारी करते कई वार देखा होगा। चांदमारी में कई सिपाही निशाने लगानेके लिये लक्ष्य बांधते हैं, परन्तु निशाना उसी का लगता है जिसका लक्ष्य ठीक नेत्रोंके साम्हने हो, परन्तु जिसका लक्ष्य भ्रष्ट होजाय वह चाहे कितनाही यत्न क्यों न करे उसका निशाना नहीं लगता। लक्ष्यका भ्रष्ट होना व न होना परिणामसे जान पड़ता है। इसीका नाम विवेक है। एक कविने विवेकका यह लक्षण कियाहै कि धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पदार्थ जिसके लक्ष्यमें रहते हैं वह विवेकी पुरुष है, परन्तु जिस पुरुषके जीवनमें न धर्म्महो न अर्थ न काम और न मोक्षकी भावनाहै, उस पुरुषका जीवन उस बकरी [अजा] की न्याईं है जिसके गलेमें दो स्तनहैं परन्तु दूध नहीं। ऐसे पुरुष विवेक भ्रष्ट होते हैं।

विवेकका महत्त्व ।

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" यह वेदान्तका एक सूत्र है, अर्थात् इसके अनन्तर ब्रह्मके जाननेकी इच्छा करनी चाहिये। किसके अनन्तर? इन चार सिद्धान्तोंके अनन्तर जिनका मैंने पहले वर्णन किया है। इन चार सिद्धान्तोंमें पहला साधन

विवेक है, अपने हित और अहितका विचार ही विवेक है ।

अब मैं आपसे पूछता हूं कि हममें विवेक कहां है ? विवेकके पश्चात् वैराग्य होता है । जिसमें विवेक नहीं उसमें वैराग्य भी नहीं होसकता । अंग्रेज़ी पढ़े लिखों में विवेक तो थोड़ा बहुत पाया जाता है परन्तु वैराग्य उनमें नाम मात्रका भी नहीं । वे कहते हैं कि वैराग्यने देशका सत्यानाश करदिया है, यह बात किसी अंशमें तो ठीक है, परन्तु सर्व अंशों में सत्य नहीं । आप लोग जिन साधुओंको वैरागी समझ रहे हैं, वे वैरागी नहीं हैं, वे मूढ़ तो देशके लिये भार हैं ।

वैराग्य क्या है ?

एक विद्यार्थी जब विद्या समाप्त कर लेता है तब उसको विवेक होता है, और शास्त्रोंमें लिखा भी है कि ब्रह्मचर्य्यके अनन्तर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ और तत्पश्चात् सन्यासहै यह एक लाइन है परन्तु दूसरी लाइन हमारे शास्त्रोंने यह बतलाई है कि जिस समय वैराग्य हो उसी समय सन्यास लेलेना चाहिये, परन्तु यह भी ब्रह्मचर्य्य और विद्या समाप्तिके पश्चात्, क्योंकि विद्या समाप्तिके पश्चात् मनुष्यको विवेक होजाता है और वह अपने शुभाशुभको जानने लगता है । विवेकके पश्चात् यदि अपना हित गृहस्थमें समझे, गृहस्थी बनजाए, और वैराग्य उत्पन्न होजाए जो सन्यास धारण कर ले, जैसे स्वामी शंकरा चार्य्य ने किया ।

स्वामी शङ्कराचार्य्यका सन्यास।

विद्या समाप्त करनेके पश्चात् स्वामी शंकराचार्य्यको देशोद्धारकी चिन्ता हुई, और गृहस्थसे वैराग्य होगया। वे अपनी माताके पास आए और कहा, माता मुझे आज्ञा दे मैं संसारका उद्धार करूं। माता प्रेमके वशमें हुई आज्ञा नहीं देती, पुत्र वेदका विद्वान है, माताकी आज्ञाको भङ्ग करना भी नहीं चाहता। एक ओर माताकी आज्ञा, दूसरी ओर संसार को उल्टे मार्गसे बचानेकी कामना, चित्त व्याकुल होगया, दिन रात इसी चिन्तामें लीन रहता है। एक दिन अपने साथीयोंके साथ तालाव पर नहाने गए............ साथी-तालावमें खेलकूद रहे हैं परन्तु उनको वही चिन्ता घेरे हुए है। सोचते सोचते उन्हें ढंग सूझ गया और उन्होंने अपने साथीयोंसे कह दिया कि मेरा पांओं संसारने पकड़ लिया है। उनका यह कहना था कि सब साथी तालावसे निकल कर भाग गए और उन्होंने शंकराचार्य्यकी माताको जाकर कहा। वह रोती हुई तालाव पर आई, शंकराचार्य्यने कहा माता घवरा मत, मुझे संसार कहता है, यदि तेरी माता तुझे घरसे निकालनेकी आज्ञा दे देवे तो छोड़ देता हूं अन्यथा नहीं। माताने सोचा यदि आज्ञा नहीं देती तो संसार पुत्र को निगल जायगा, यदि आज्ञा दे दूं तो कभी न कभी देखही लिया करूंगी। उसने कहा पुत्र मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं। वे तालाबसे बाहर निकल आए और उसी दिनसे संसारके उद्धारमें लग गए।

मैंने आपको बतलाया कि वैराग्य व संन्यास ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् और वानप्रस्थ दोनों अवस्थाओंमें हो सकता है। यदि ब्रह्मचारी समझे कि मैं अपनी इन्द्रियों पर विजय नहीं पासकता तो उसका उपाय गृहस्थ है, और यदि वह सम्पूर्ण सांसारिक कामनाओंको मार कर संसारका उपकार कर सकता है तो सन्यास ले लेवे।

वैराग्यने सत्यानाश नहीं किया।

अब मैं यह बतलाना चाहता हूं कि क्या सचमुच वैराग्य सत्यानाश करने वाली वस्तु है। गृहस्थमें प्रवेश करके मनुष्य के लिये उपदेश है कि वह अपनी पत्नीसे तो राग करे परन्तु शेष सब स्त्रियोंको माता और भगिनी जानकर उनसे वैराग्य करे। क्या यह वैराग्य देशका सत्यानाश करने वाली वस्तु है। दुःख तो यह है कि जहां हम अपनी स्त्रीमें राग करते हैं वहां हम दूसरी स्त्रियोंसे भी राग करने लगजाते हैं। वैराग्य संसार की व्यवस्थाको ठीक रखनेका साधन है,जैसाकि ऋषि दयानन्द ने वैराग्यवान होकर किया।

एक ब्रह्मचारी गुरुकुलसे पढ़कर आरहा था, उसकी जेबमें पंद्रह स्वर्ण मुद्रिका थीं। ठगने रास्ता रोककर पूछा बतला तेरे पास क्या है? ब्रह्मचारीने पंद्रह मुद्रिका निकाल कर दिखलादीं। ठगने पूछा, तुमने मुझे सच सच क्यों बतलाया है। ब्रह्मचारीने उत्तर दिया, मुझे गुरुकुलमें यही शिक्षा मिली है। इस बातका ठगके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और बोला, सज्जन मुझे भी कुछ उपदेश कर, ब्रह्मचारीने कहा,ठगी छोड़ दो और उसने उस निन्दित कर्मको छोड़ दिया। यही दशा बाल्मीक ऋषि की हुई थी।

परन्तु हम आप प्रतिदिन उपदेश सुनते हैं, कुछ फल नहीं होता, क्योंकि हममें न विवेक है न वैराग। महाराज भर्तृ एक प्रश्न करते हैं और आप ही उसका उत्तर देते हैं कि क्या कारण है कि एक मनुष्य उपदेश सुन कर सुधर जाता है और दूसरा विगड़ जाता है। वे वतलाते हैं कि जिसके अन्तःकरण में सतोगुणकी वृत्ति है उसको ज्ञानका एक विन्दु तार देता है और जिसके अन्तःकरणमें तमोगुणका राज्य है उस पर उपदेश का एक विन्दु उसके अन्धकार को वढ़ा देता है।

आरफ़ और ईश्वर भजनके प्यारे एकान्तको वहुत पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार भी प्रत्येक समयमें एकान्तकी खोजमें रहते हैं। और आरफ़ अर्थात् भक्त तो ईश्वर भक्ति के लिये एकान्त पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार चोरी और यारीके लिये। अव इसमें एकान्तका क्या दोष?

इसीलिये कहा है कि पहले अन्तःकरण को शुद्ध करो फिर प्रत्येक वस्तु अपनी वास्तविक अवस्थामें दिखलाई देगी। सन्ध्या, स्वाध्याय, सत्सङ्ग, सव काम विवेकके हैं। महात्मा बुद्ध, शंकर स्वामी, दयानन्द जितने भी महा पुरुष हुए हैं, वे सव विवेकी थे। जितना जितना किसीमें अधिक विवेक होगा उतना उतना ही वह अधिक महान होगा।

बुद्धके जीवनकी एक घटना।

महात्मा बुद्ध जव घरसे निकलने वाले थे तो उनके पिताने समझाया, कि पुत्र! मैं वृद्ध होगया हूं, मेरी सेवा तेरा धर्म्म है। बुद्धने उत्तर दिया, मैं केवल एक वृद्धकी सेवा नहीं

चाहता, परंच संसार भरके वूढ़ोंकी सेवाका व्रत धारण करना चाहता हूं। फिर उन्हें कहा गया कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न हुआ है इसलिये अब घर छोड़ना उचित नहीं। उत्तर दिया; इस बालकने मुझे उपदेश दिया है, कि घरसे शीघ्र निकल क्योंकि यह कन्या और पुत्र बंधन की कड़ीयां हैं, जितनी अधिक होंगी उतना ही कस कर जकड़ लेंगी। मैंने आपको बतलाया कि अन्तःकरणकी निर्बलतासे जीवात्मा निर्बल हो जाता है, और मलीनतासे मलीन होजाता है। काम क्रोध लोभ मोह अहंकार आत्माको मलीन करने वाली वृत्तियां हैं। इसके लिये एक उदाहरण देता हूं, आपने एक बागीचेमें आम्र निम्बु और मिर्चके पोदे लगाए हैं, आकाशसे उन पर जल बरसता है, एकके लिये वही जल मीठा रस बनाता है, दूसरेके लिये अम्ल और तीसरेके लिये कड़वा रस बनाता है। अब जलका क्या दोष, जिस गुण वाले पौदे पर पड़ा उस पर वैसा प्रभाव डाला।

एक वनियेका उदाहरण।

एक स्थान पर एक पण्डित महाभारतकी कथा कर रहे थे। कथा की समाप्ति पर किसीने उससे कुछ शिक्षा ग्रहणकी और किसीने कुछ। एक बनिया भी उनमें कथा सुन रहा है, पण्डितजी ने उससे पूछा कि क्यों भाई तुमने क्या शिक्षा ग्रहण की, उसने उत्तर दिया कि अपने भाईयोंका माल जी खोलकर उड़ाएं और मर जाएं परन्तु लड़े बिना उनका धन वापस न करें। यह है अन्तःकरणकी मलीनता।

अन्तःकरणकी शुद्धि अत्यावश्यक है।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तःकरणकी शुद्धिमें लग जाय, सारा संसार थोड़े दिनोंमें सुधर जाय। परन्तु हम लोग करते क्या हैं? बूट कपड़े और बाईसिकलकी सफ़ाईके लिये तो दो दो घण्टे नित्य प्रति लगा देते हैं, किन्तु अपने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये पंद्रह मिन्ट भी प्रतिदिन नहीं देते। बताओ इस भरी समाजमें कितने मनुष्य हैं? जो सच्चे हृदयसे दस मिन्ट रोज़ भी अपने मनको शुद्ध करनेमें देते हैं, यदि तुम लोग यत्न ही नहीं करते, तो फिर यह कहना कि हमारे मन शुद्ध नहीं होते, भक्ति और सन्ध्यामें जी नहीं लगता कहां तक ठीक है। बात तो तब है कि यदि आप मनसे नित्य प्रति समय दें और फिर अन्तःकरण शुद्ध न हो।

बिजली प्रकाश देगी।

घोर अंधेरीकी रात्रिमें आप चलरहे थे, मार्ग दिखाई न देता था, पग पग पर ठोकरें खाते थे, उस समय परमात्मा की कृपा हुई, और बिजली ज़ोरसे चमकी, और मार्ग दिखला कर चली गई। अब यदि आप यह चाहें कि बिजली आपके पास ठहरी रहे तो यह हो नहीं सकता। यही दशा धार्म्मिक जगतकी ऋषि दयानन्दके आनेसे पहले थी। सारा संसार अंधकारमें था, परमात्माकी कृपा हुई, ऋषि दयानन्द जगतमें आए और मार्ग दिखला कर चले गए। अब आप लोग चाहते हैं कि वे हमारे पास बैठे रहते अथवा हमें फिर आकर जगाएं, यह नहीं हो सकता यदि आपने उस समय प्रकाश नहीं लिया तो अब आपसे क्या आशा हो सकती है। इस

लिये समय है कि अब भी संभल जाओ और समझ कर संसारका मुक़ाबिला करो। मैं शरीरकी शुद्धिका विरोधी नहीं, परन्तु शरीरके साथ यदि अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं तो शरीर की शुद्धि किसी कामकी नहीं, अन्तःकरणकी शुद्धि सच्चा विवेक है जिससे मनुष्य अपनी हानि और लाभ को समझ सकता है।

कैसे शोकका स्थान है कि यदि हमारा एक पैसा खो जावे तो हम शोकके सागरमें डूब जाते हैं,परन्तु जातिके लाल इसाई और मुसल्मान होरहे हैं, परन्तु हमें कुछ चिन्ता नहीं। किसी कविने क्या अच्छा कहा हैः—

खोजाए गर एक पैसा लाख हम ग़म करें।
खोजाएं लाल जातिके न चश्म हम नम करें॥

यहां किस किस बातका रोने रोएं, सब लाइनें बिगड़ रही हैं। बलवान मांगे तो उसे देते हैं परन्तु किसी धर्म कार्य्य के लिये मांगा जाय तो सौ बहाने करते हैं। ऐसे लोगोंके लिये भर्तृहरिजीने लिखा है, कि जिनका धन धर्म कार्य्योंके लिये नहीं वह न उनके लिये लाभदायक और न दूसरोंके लिये, और शीघ्र ही नाशको प्राप्त होता है।

यह तो रही दानकी दशा, अब और सुनिये, बलवान मारे भी और रोने भी न दे। एक ओर तो बचपनकी शादी की प्रथा और दूसरी ओर जब कन्या विधवा हो जाय तो उस के लिये फिर शादीकी आज्ञा नहीं, यह विवेक भ्रष्ट नहीं तो और क्या है। बंगाल बिहारमें एक एक ब्राह्मणकी तीस तीस स्त्रियां हैं, वहांके लोग ब्राह्मणको कन्या देना अपना गौरव

समझते हैं, और वे कन्या भी फिर ब्राह्मणके घर नहीं रहती परंच अपने गृहमें रहकर ब्राह्मणकी स्त्री कहलाती है ।

एक कविने लिखा है, कि जिस मनुष्योंकी श्रेणीने वेद के उपदेशोंसे प्रमादका कीच नहीं धोया, वह कल्याणकी इच्छा कैसे कर सकती है । जो अच्छे उपदेशोंकी उपेक्षा करता है, उसकी वही दशा होती है, जिसके गृहमें सब कुछ होता है, परन्तु वह भूखा मरता है । आपके लिये यह समय प्रमादका नहीं, परमात्माने आपको यौवन दिया है, यदि इस समय धर्मका निसंश्चय नहीं करोगे तो पछताओगे और फिर उस समय कुछ न बनेगा । इसलिये समय है कि आप अपने अन्तःकरणको शुद्ध और दृढ़ करो और अपने कर्त्तव्यके साम्हने हाथ जोड़ कर खड़े रहा करो । यदि ऐसा करोगे तो देखोगे कि थोड़े ही समयमें तुममें कितना बल आ जायगा । स्वर्गवासी स्वामी दर्शनानंद एक उदाहरण दिया करते थे और वह बहुत अच्छा उदाहरण था । वे रेलगाड़ी और इञ्जनका उदाहरण देकर बतलाया करते थे कि ऋषि दयानन्द आपके लिये इञ्जन था, जो व्यक्तियां गाड़ीयोंके समान इस इञ्जनके साथ लग जाएंगी वे अपने आदर्श स्थान पर पहुंच जाएंगी । यदि आप अपने आदर्श पर पहुंचना चाहते हैं तो ऋषिके चरण चिह्नों पर चल कर उसका अनुकरण करें, आपका कल्याण होगा, और संसारमें आपकी कीर्ति बढ़ेगी ।

॥ ओ३म शम् ॥

ब्रह्मचर्य्य ।

सज्जन पुरुषो ! वेदमें एक मंत्र आया है, जिसमें वतलाया गया है कि विद्वान रोगी और नास्तिक कौन है। पहला प्रश्न इसमें यह किया गया है कि विद्वान कौन है, उत्तर दिया गया है अर्थवत्, जिसमें अर्थ विद्यमान है, जो अर्थहीन एक बात भी नहीं कहता। दूसरा प्रश्न यह है कि रोगी कौन है? उत्तर है, अधातु अर्थात् जिसमें धातु (वीर्य्य) नहीं। धातुका अर्थ विश्वास भी है, जिसका संसारमें विश्वास न रहे वह भी रोगी है विद्वानके चिह्न एक और श्लोकमें भी वर्णन किये हैं, इसमें वतलाया गया है कि जिसका आचार विचार [२] उक्ति और कृति [३] मन्तव्य और कर्त्तव्य एक हो वह विद्वान है। इस कसौटीके अनुसार आप देखलें कि आपमें कितने विद्वान हैं। हम लोग कहते कुछ और करते कुछ और हैं परन्तु कर्त्तव्यसे कुछ और दिखलाते हैं। मनके विचार कुछ और हैं परन्तु प्रगट कुछ और ही करते हैं। प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों हो गया, उत्तर स्पष्ट है कि लोग गिर गए हैं। एक मनुष्य नौकरी के लिये तहसीलदारके पास गया, उसने कहा कल आना तुम्हें नौकरी दी जायगी। वहांसे वापस आ रहा था, किसीने पूछा कहांसे आ रहे हो, उत्तर दिया यूंही घूमने गया था। देखिये थोड़ीसी वातमें उसनें झूठ वोल दिया, यह क्यों, केवल इसलिये कि उसे भय है कि यदि मैंने सत्य कह दिया तो वह मुझसे पहले ही तहसीलदारके पास पहुंचकर नौकरी न प्राप्त करले, और सचमुच ऐसा होता है। यह तो हुई उक्ति और कृति। [२] अव आचार विचारको देखलो, इसमें वड़ा

भारी भेद है। अंगरेज़ी लिखे पढ़ोंका तो सिद्धान्त ही यह है, कि पब्लिक लाइफ़ (Public life) और तथा प्राइवेट लाइफ़ (Private life) और। उनकी आभ्यन्तरिक अवस्था तो कुछ और है, परन्तु बाहर दिखानेके लिये कुछका कुछ बनकर दिखाते हैं। यह केवल अंग्रेज़ी शिक्षाका ही फल नहीं परंच भारतके पतनकालमें तांत्रिक लोगोंने ऐसा मत निकाला था, कि गृहमें तांत्रिक, सभामें जाकर वैष्णव, मंदिरमें जाकर शिव के उपासक अपने तांई प्रगट करना। यही अवस्था आज कल के लोगोंकी है। दुःखके साधनोंको दूर और सुखके साधनों को प्राप्त करनेका नाम अर्थ है और जो इस अर्थको धारण करता है वह सच्चा विद्वान है॥

जन्तुओं का उदाहरण।

जन्तुओं में भी यह गुण पाया जाता है कि वे दुख के साधनों को दूर और सुखके साधनों को प्राप्त करते हैं। मैं आपको एक साधुकी देखी हुई बात सुनाता हूं:—

संसार नदी के तीर पर लेटा रहता है, और कभी २ मनुष्यों पर भी आक्रमण करता है, परन्तु कई बार ऐसा हुआ कि स्वामी जी समाधि में मग्न हैं और संसार उनके पास लेटा पड़ा है। शास्त्रों में कहा है "अहिंसादि वैरत्याग।" अर्थात् जब मनुष्य अहिंसक हो जाते हैं, उस समय प्राणि उससे वैर त्याग देते हैं, और इस बातको तो सब जानते हैं कि छोटे बच्चे को सांप नहीं काटता परंच उसके साथ खेलता है। संसार जिसका अभी मैंने ज़िकर किया है एक ऐसी नदी के तट पर रहता था जहां बहुत से बन्दर भी थे। जब कोई बन्दर पानी

पीने आता, वह उसे ग्रास कर लेता । इसी प्रकार वह अनेक बन्दर निगल गया । बन्दरों की कमेटी हुई और उन्होंने इससे बचने की युक्ति निकाली । वे एक बड़ीसी शाखाको उठा लाए और उसके अगले भागकी नोक पर लिश्कफाही डालकर उसे नदीमें डाल दिया और एक बन्दर उसी लिश्कफाही की दूसरी ओर बैठ गया । जब संसार उस पर लपका बन्दर पीछे हट गया और उसका सिर उस लिश्कफाही में फंस गया, सारे बंदर उस शाखा पर से उठगए जिससे वह संसार फंसा हुआ नदी से बाहर निकल आया । बाहर आना था कि समस्त बन्दरों ने मिलकर उसे मार दिया । यह है जन्तुओं का काम ॥

बलिदान का भाव भी जन्तुओं व बनस्पतियों में पाया जाता है । दस तोले जलमें ६ तोले निमक डाल दो वह गल जायगा, परन्तु उसके पश्चात् जो निमक डालोगे वह नहीं गलेगा । पहले निमकने स्वयं गलकर अपने सजातियों के लिये रास्ता साफकर दिया है । जिस देशके मनुष्य अपनी जाति धर्म और अपने देशके लिये अपने आपको खोदेते हैं, वही देश उन्नत होते हैं । अफ़्लातूनने एक स्थान पर कहा है कि दूसरोंकी भलाईमें ही अपनी भलाई है, ऐसे ही पुरुषोंको अर्थवत् व विद्वान कहा गया है, केवल पुस्तकोंको रटने वालोंको विद्वान नहीं कहते ॥

रोगी कौन है ?

जिसकी धातु पुष्ट न हो उसको रोगी कहते हैं । सम्पूर्ण समाचार पत्रोंको उलटकर देखलो, धातु पुष्ट करने वाली औषधियों से भरे पड़े हैं और इन्हीं विज्ञापनों के सिर पर

समाचार पत्र चल रहे हैं। चांदी लोहा आदि धातुओंको भी धातु कहते हैं, क्रियाको भी धातु कहते हैं और वीर्य्यको भी धातु कहते हैं। जैसे क्रियाके विना पद नहीं वन सकता, इसी प्रकार वीर्य्यके विना जीवन नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में एक भारी भूल पड़ रही है, यहां अग्निके बुझानेके लिये उस पर तेल डालाजाता है। धातुकी न्यूनतासे तो सारी व्याधियां हैं, परन्तु फिर उनका यत्न ऐसी औषधियों से कियाजाता है, जो धातुको जोश देकर जलादेती हैं। औषधियोंसे सन्तान उत्पन्न की जाती है और फिर आशाकी जाती है कि वह स्वस्थ रहे॥

जिसकी धातुमें दोष आगया हो उसका एक ही यत्न है और वह यह कि वह एक वर्ष तक मन वाणी और कर्म से ब्रह्मचारी रहे, सब दोष दूर हो जाएंगे। परन्तु एक कवि ने कहाः— पन्दे हक कड़वी लगे इन्सानको अफसोस आह।

इन बातों को सुनता कौन है, जिस प्रकार कुपथ्य करने वाला रोगी वैद्यको कसाई की तरह देखता है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य आपको बुरा लगता है। समग्र रोग आपने स्वयं उत्पन्न किये हैं परमात्माने उनको उत्पन्न नहीं किया॥

उत्पत्ति क्रम इस प्रकार है, सबसे पहल आकाश और उसमें प्रकृत्तिक परमाणु फैले हुए थे, परमात्माने उनको इकट्ठा कर दिया। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि अग्निसे जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वीसे औषधियां और वनस्पति, औषधियोंसे पुरुष उत्पन्न हुआ और पुरुषसे भूख उत्पन्न हुई और भूख निवृत्त करनेके लिये इसका उपाय परमात्माने औषधि अन्न और वनस्पति उत्पन्न की॥

इस समयके जितने भी रोग है वह मनुष्योंने स्वयं सहेड़े हैं और अनुभव से ऐसा प्रतीत होता है कि सौ में निन्यानवें मनुष्य धातुके रोगमें ग्रस्त हैं और यह अनुभवभी मैंने वल्लभगढ़ में किया ॥

इस लिये यदि आप इन रोगोंसे बचना चाहते हैं तो ब्रह्मचारी बनो ॥

अफ़ातूनका पुत्र जब बहुत बड़ा हो गया तो अफ़ातून की स्त्रीको एक और पुत्रकी इच्छा हुई, उसने पुत्रको सिखलाया और पुत्रने अपने पितासे कहा कि यदि मेरा एक भाई और हो जाय तो क्या ही अच्छा हो, हम दोनों खेलें ॥

अफ़ातूनने उत्तर दिया कि जाओ मैं पहले ही पछता रहा हूं, यदि मैं तुझे उत्पन्न न करता तो मैं संसार में अकेला होता और मेरा सारा मस्तिष्क फिलासफीमें लग जाता। प्राचीन विद्वान लोग वीर्य्यकी इतनी कदर करते थे परन्तु हम वीर्य्यको ऐसा समझते हैं जैसा नाकसे मल साफ कर दिया ॥

स्वामीजी के जीवनकी एक कथा ।

पिछले देहली दर्बार में जब मैं गया, एक ग्वालियारके मारवाड़ीने मुझे स्वामीजी के जीवनकी एक कथा सुनाई। उस ने बतलाया कि स्वामीजी के उपदेशोंकी चर्चा सुनकर एक प्रतिष्ठित मुसलमान भी उनके पास गया, परन्तु उसका मुख सर्वदा उदास रहता था। स्वामीजी ने कारण पूछा, उसने उत्तर दिया कि मेरे कई बच्चे हुए हैं परन्तु जीता कोई नहीं है इस लिये मन सर्वदा उदास रहता है। स्वामीजी ने कहा कि उपाय तो हम बतला देते हैं परन्तु है कुछ कठिन यदि तुम

करो तो हम विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न होगा और जीता रहेगा। उसने स्वामीजी के चरण पकड़ लिये और कहा कि महाराज जो कुछ आप कहेंगे मैं करूंगा। स्वामी जी ने कहा कि सब से बड़ी शर्त एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रखने की है, यदि यह स्वीकार हो तो अपनी स्त्रीसे पूछकर आओ कि वह भी स्वीकार करती है व नहीं। वह घर गया और दूसरे दिन आकर कहा कि महाराज हम दोनों स्वीकार करते हैं। स्वामीजीने उनको गर्म वस्तुएं मांस मदिरा आदि छोड़ने के लिये कहा। एक वर्ष उन्होंने ब्रह्मचर्य्य करके पुत्र उत्पन्न किया और वह इस समय उनके घरमें जीवित है। ब्रह्मचर्य्यसे वीर्य्यके सब दोष दूर होजाते हैं।

ब्रह्मचर्य्य जैसा पुरुषके लिये है वैसा स्त्रीके लिये भी आवश्यक है। आपने ईंटें बनती कई बार देखीं होंगी। यदि मट्टी नर्म हो तो भी ईंट ख़राब हो जाती है, यदि सांचा ढीला हो तब भी ईंट टेढी होजाती है। यदि सांचा और मट्टी दोनों ही ख़राब हों तब तो क्या कहना है। यही दशा मनुष्यके बच्चे की है, जब तक स्त्री और पुरुष दोनों ही दोष रहित न हों बालक बलवान उत्पन्न नहीं हो सकता। जन्तुओंको परमात्मा ने एक एक गुण दिया है, कोकिलाका कण्ठ सुरीला, तोतेका नाक अच्छा, मृगके नयन सुन्दर, परन्तु मनुष्यके बच्चेमें ईश्वर ने सम्पूर्ण गुण इकट्ठे कर दिये हैं, अब यदि हम अपने दुष्कर्म्मों से उन्हें ख़राब उत्पन्न करें तो इसमें परमात्माका क्या अपराध। प्राचीनकालमें मनुष्य ऐसे उत्पन्न नहीं हुआ करते थे जैसे कि आजकल हम हैं।

प्राचीनकालके आदर्श भीम अर्जुन राम और हनुमान जैसे मनुष्य थे, और यह केवल ब्रह्मचर्य्यका प्रताप था अब भी यदि दुष्ट विचारोंकी ठोकर न लगे तो पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रखना कोई बड़ी बात नहीं।

विश्वास की आवश्यकता।

विद्या और ब्रह्मचर्य्यके पश्चात् तीसरी आवश्यक बात प्रत्य अर्थात् विश्वास है। जितना जगतमें किसी का विश्वास है उतना ही उसका गौरव है। जिस प्रकार वृक्षोंके लिये जल है उसी प्रकार मनुष्योंके लिये विश्वास है। इस लिये सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करो। जब तुम्हें अपने पर विश्वास नहीं तो दूसरों को कैसे तुम्हारा विश्वास होगा। जो जाति विश्वाससे शून्य हो जाती है उसका कोई ठिकाना नहीं रहता, संसारमें वह नीच समझी जाती है।

स्वामी विवेकानन्दने अपनी पुस्तकमें एक शोकजनक गाथा लिखी है। वे लिखते हैं,जापानमें पहले जब कोई भारत निवासी जाता तो वे उसका बड़ा आदर सन्मान करते और छातीसे लगाते थे। वहां एक बड़ी भारी लाईब्रेरी है जिसमें हर एक को जानेकी आज्ञा नहीं, परन्तु भारतनिवासीयोंके लिये उसका भी दरवाज़ा खुला था, परन्तु एक ऐसी शोकजनक घटना हुई जिसने सदाके लिये इस लाईब्रेरी का दर्वाज़ा भारतीयोंके लिये बंद कर दिया और उनका विश्वास खो दिया। एक बार लाईब्रेरीमें एक भारतनिवासी पुस्तक पढ़ रहा था। पुस्तकका एक पृष्ट उसे ऐसा पसन्द आया कि आंख बचाकर उसने वह पृष्ट फाड़ लिया और चल दिया, परन्तु

देख रेख पर पकड़ा गया और उसी दिनसे भारतीयोंके लिये उस लाईब्रेरीका दरवाज़ा बंद होगया।

यही दशा धर्मकी है; प्रत्येक मनुष्यको यह समझना चाहिये कि जितना मैं उन्नत हूंगा उतना मेरा धर्म्म उन्नति करेगा, और जितना मैं दुष्कर्म्म करूंगा उतना ही अपयश मेरे धर्मका होगा। स्वामीजीने भी अपनी पुस्तकोंमें परस्पर विश्वास पर बड़ा बल दिया है।

शुक्रका उदय और अस्त।

आजकल जो पत्रीयां वर्त्तमान हैं उनमें एक बड़ी विचित्र बात होती है। लिखा होता है, कि अमुक मासमें शुक्र का उदय होगा और अमुक मासमें अस्त। शुक्रके उदयके मासमें विवाह होते हैं शेषमें नहीं। वे शुक्रसे शुक्र तारे का अर्थ लेते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है विवाहका तारेके साथ कोई सम्बन्ध नहीं और यदि तारेसे प्रयोजन होता तो आज हिन्दुओंमें असंख्य विधवाएं दिखाई न देतीं। यहां शुक्र से अभिप्राय है वीर्य्यका, अर्थात उस पुरुषसे विवाह कराना चाहिये जो वीर्य्यवान हो, जिसका शुक्र व वीर्य्य उदय हो। जिनका शुक्र उदय होता है, उनके मुख मण्डल पर सेवकी न्याई लाली छाजाती है, परन्तु यहां मैं देखता हूं सबके चेहरों पर स्याही और ज़र्दी छा रही है। एक बात और कहकर मैं अपने व्याख्यान को समाप्त करता हूं, वह यह कि विद्या ब्रह्मचर्य्य और विश्वासके साथ साथ समयकी प्रतीक्षा करना भी सीखो। कभी ऐसी उतावली न करो जिससे तुम्हारा बना बनाया खेल बिगड़ जाय। वही मनुष्य सफल होते हैं जिनमें

समय और स्थानके पहचाननेकी योग्यता होती है। यदि इन बातोंको विचार कर इन पर चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। संसार तुम्हारी कीर्ति और यश को गायेगा।

मनुष्य जीवन की सफलता।

सज्जन महानुभावो! वेद कहता है कि परमेश्वर महान् हैं सब पदार्थ उसके गर्भमें हैं, मनुष्य मात्रके लिये उसीकी पूजा उपासना करनी चाहिये। उसका विज्ञान तारा मण्डलके देखनेसे पूर्ण प्रतीत होता है। जैसे प्रत्येक वृक्षका आधार उस का मूल है उसी प्रकार समस्त संसारका आधार परमेश्वर है। संसारके सारे पदार्थ परिवर्तनशील हैं परन्तु परमात्मा एक रस हैं। जिसको यह आवश्यकता हो कि वह एक जैसा रहे उसको उचित है कि वह परमात्माकी उपासना करे, जीवात्मा के लिये उसकी उपासनाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

स्वार्थ त्याग ही सफलताकी कुञ्जी है।

जब तक मनुष्यसे स्वार्थका परित्याग न हो जाय, उस की मुक्ति नहीं हो सकती। एक परिवार अथवा देश क्यों बिगड़ जाता है, इसलिये कि उसमें स्वार्थकी मात्रा बढ़ जाती है। जितनी खुदगरज़ीकी मात्रा किसीमें बढ़ जायगी उतना ही शीघ्र वह नष्ट हो जायगा। स्वार्थका त्याग ही मनुष्यके सुधार का सच्चा मार्ग है, वेदों और उपनिषदोंमें इसके अनेक दृष्टान्त हैं। अमरीका और अन्य उन्नत देशोंकी अवस्था सुनकर हमारे मुंहमें भी पानी भर आता है, परन्तु हम उन साधनों पर विचार नहीं करते जिनकी कृपासे उन्होंने उन्नति की है। एक रूपमें

तो हमारा देश भी इस समय अमरीका बना हुआ है। अमरीकामें एक रुपयेका तीन छटांकसे अधिक घी नहीं मिलता, अब यहां भी पांच छटांकसे अधिक घी नहीं मिलता। वहां तो ३ छटांक घी खरीदकर निर्वाह हो जाता है क्योंकि वहां रुपया बहुत है, परन्तु यहां रुपया इतना नहीं है इसलिये यहां घोर आपत्ति आने वाली है। आपने बमका गोला देखा होगा, यदि नहीं तो वह गोला अवश्य देखा होगा जो विवाह शादी के अवसर पर चलाया जाता हैं, उस गोलेमें बारूद और छोटे छोटे कंकर भरे जाते हैं, ज्योंहि गोलेको आग दिखलाई अथवा भूमि पर पटका गोला फट गया, गोला फटने पर सबसे अधिक हानि उस मनुष्यकी होती है जो उसके निकट होता है, जिसने सच्चाईको अपने स्वार्थसे दबाया था। यदि उन्नति के मार्ग पर चलना है तो स्वार्थको छोड़दो अन्यथा उन्नतिकी बातें करना छोड़दो।

ऋषि दयानन्द स्वार्थसे कितना परे थे इसके लिये एक दृष्टान्त देता हूं:—

मैं एक बार छपरामें गया तो देखा कि एक मन्दिरका पुजारी बड़े प्रेमसे हवन कर रहा है। मैंने उससे पूछा; महाराज! यह क्या? मूर्ति पूजा और हवन! उसने बतलाया हवनसे प्रेम मुझे स्वामी दयानन्दकी कृपासे हुआ है। मन्दिर की पूजा तो पेटके कारण है,मेरा सच्चा विश्वास इसपर नहीं है। जब स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ करने जाते थे तो मैं उनकी पुस्तकें उठाकर ले जाता था। इस पुजारीने मुझे स्वामीजीके जीवनकी एक घटना इस प्रकार सुनाई:—

छपराके पास एक छोटीसी रियासत है वहांके रयीस ने अपने पण्डितोंसे कहा कि वे स्वामी दयानन्दसे शास्त्रार्थ करें। सोलह पण्डित मिलकर शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हुए। रयीसने सोलह चौकियां एक ओर बिछा दीं और उनके सन्मुख दूसरी ओर एक चौकी बिछादीं। जब वे सोलह पण्डित आकर चौकियों पर बैठ गये तो उस रयीस महाशय ने अपना सेवक स्वामीजीकी ओर भेजा। छे फुट और पांच इञ्चका जवान जिस समय कमरेके अन्दर प्रविष्ट हुआ तो पण्डित लोग भौंचक्के रह गये साहस न पड़ा कि स्वामीजीसे बात कर सकें, परन्तु कुछ तो कहना ही था रयीस महाशय की ओर मुंह करके बोले, आपने हमारे लिये लकड़ी की चौकियां मंगाई हैं और स्वामीजीके लिये सफ़ेद पत्थरकी, आपने हमारा अपमान किया है हम शास्त्रार्थ नहीं करते। जब उठकर चलने लगे तो स्वामीजीने कहा कि मैं भी संग-मर्मरकी चोकीको छोड़ता हूं आओ भूमि पर बैठकर शास्त्रार्थ करें। यह था स्वार्थ त्याग।

परन्तु यहां दशा क्या है, इतने आर्य्य पुरुष बैठे हैं, सन्ध्या उपासना यह तो करते होंगे, परन्तु प्रेमसे स्वार्थ रहित होकर नहीं। कुर्सी पर बैठे हैं तो करली हाथ मुंह धोया है या नहीं, इसकी कुछ पर्वाह नहीं। अर्थात् सन्ध्या भी करेंगे तो स्वार्थके साथ जिससे पांच सात मिण्टकी हानि न हो वैसे गप्पें हांकनेमें चाहे सारा दिन व्यतीत हो जाय।

एक पुरुष चारपाई पर बैठा माला फेर रहा था। एक मनुष्य उसकी छत पर चढ़कर नाचने लग गया। उसने

पुकारा ऊपर कौन है, उत्तर मिला कि ऊंट नाच रहा है वह चकित होगया और पूछा कि चार मंजिल ऊपर ऊंट कैसे चढ़ सकता है, ऊपर वाले ने उत्तर दिया जैसे चारपाई पर चढ़ कर ईश्वरकी उपासना हो सकती है ।

किसी मेलेमें एक वैश्यका लड़का गिर गया, लोगोंने उसके पिताको आकर बतलाया । उसने कहा वैश्यका लड़का कभी बिना प्रयोजन नहीं गिरता, अवश्य किसी स्वार्थसे गिरा होगा। लोग आश्चर्य रहगये कि यह मनुष्य अच्छाहै। इसका लड़का गिरा और उसको चोट आई,परन्तु यह कहता है कि किसी स्वार्थ से गिरा होगा । कुछ समयके पश्चात् लड़का घर पहुंचा, उस ने पूछा कि कैसे गिरा था । लड़केने उत्तर दिया कि भूमि पर एक सोनेकी मोहर पड़ी हुई थी, मैं यदि उसे वैसे ही झुक कर उठा लेता तो लोग मुझसे छीन लेते। मैं गिर कर चिल्लाने लगा कि मुझे चोट लगी है और इस बहानेसे मोहर मुंहमें डालली लोगोंने मुझे मिठाई ले दी । होते होते यह बात लोगों तक पहुंच गई कि वैश्यका लड़का बिना स्वार्थके नहीं गिरता । अब यदि सचमुच भी किसी वैश्यको चोट आए तो कोई उससे सहानुभूति नहीं करता ।

उपनिषदोंमें एक गाथा आई है कि एक बार इन्द्रियों का परस्पर विवाद हो पड़ा और प्रत्येक इन्द्रिय अपने आप को बड़ा समझने लगी । सब बारी बारी शरीरमें से निकल गईं परन्तु शरीर जीवित रहा परन्तु जब प्राण निकले तो शरीर मर गया, क्योंकि प्राणोंमें स्वार्थ नहीं, वे जो कुछ लेते हैं इन्द्रियोंको बांट देते हैं अपने पास कुछ नहीं रखते । जो

लोग प्राणों के समान स्वार्थ का परित्याग करके संसार में रहेंगे, उन्हीं व्यक्तियों और जातियों का कल्याण होगा। संसार में ऐसे भी लोग हैं जो अपना स्वार्थ पूरा करके भी काम बिगाड़ देते हैं, वेद कहते हैं कि ऐसे मनुष्य बहुत अधोगति को प्राप्त होते हैं। जहां स्वार्थ आएगा उसकी सेना विरोध उसके साथ आएगी॥ किसी ने कहा है :—

घटे जब वैर विरोध विकार, बढ़े तब विनय विवेक विचार।
होवे सुखद समाज सुधार, पीछे हो भारत का उद्धार।

विरोधके रहते हुए विवेक और सुधार कैसे रह सकते हैं, संसार में पिता पुत्र माता पिता और भाई बहन का अतीव निकट सम्बन्ध है, परन्तु अवस्था यह है कि न भाई भाई के कहने में है, न पुत्र पिता की आज्ञा में है फिर उन्नति हो तो कैसे ? अंगरेज़ी वालों का सिद्धान्त है कि निर्बल संसार में नहीं रह सकते। यह सिद्धान्त पशुओं और जानवरों की अवस्थामें तो ठीक है परन्तु मनुष्योंकी अवस्थामें नहीं। यदि मनुष्योंकी अवस्था में भी यही सिद्धान्त काम करें तो फिर मनुष्यों और पशुओंमें क्या भेद रह गया। न्याय यह चाहता है कि बलवान निर्बलों की रक्षा करें क्योंकि दो कमज़ोरियों में बल विद्यमान है। बालपनकी अवस्था कमज़ोरीकी अवस्था है, उसके पश्चात् यौवन और फिर बुढ़ापा फिर कमज़ोरी की अवस्था। इस पर जो अभिमान करे उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है ?

स्वामीजी लिखते हैं बढ़ी हुई शक्तियां केवल स्वार्थवश होकर गिरती हैं। अभिमान गिरावट की पहली सीढ़ी है।

जातियों के इतिहासको पढ़कर देखो कि किस प्रकार उन्होंने स्वार्थ रहित होकर भावी सन्तानों के लिये मैदान साफ़ किया अपने इतिहास में रामचन्द्रजी का समय देख लो, कैकयीने स्वार्थवश होकर रामचन्द्रजी को सिंहासनसे वंचित किया, परन्तु भरत ने इतना स्वार्थ त्याग किया कि आज जगतमें उसका नाम अमर है ॥

अमरीका आदि देशों के गीत गानेसे भारत उठ नहीं सकता । यहां तो रोटीकी चिन्ता है, हमें उनके ५७ मंज़िलके मकानोंसे क्या लाभ । यहांके एक वर्षके दानको रोकलो, यहां भी ६० मंज़िल के मकान बन सकते हैं । यदि किसी रोगीकी दशा बिगाड़नी हो तो वार २ उसके सामने स्वादिष्ट पदार्थों की बातें करो ॥

एक ओर रामायणमें भरतका त्याग है तो वहां दूसरी ओर महाभारतमें दुर्य्योधन का स्वार्थ है जिसनें देशको इस अधोगतिको प्राप्त कराया ॥

स्वार्थ त्यागका एक और उदाहरण ।

शाहजहांकी बेटी बीमार हुई, वैद्यों हकीमोंका इलाज किया, आराम न हुआ, किसीने कहा कि डाक्टर बाटन नामी एक अंगरेज़ डाक्टर है, उसका इलाज करायें । डाक्टर बाटन को बुलाया गया, उसके हाथसे रोग दूर हो गया । बादशाह ने कहा मांगें आप क्या मांगते हैं, उसका विचार था कि यह चार पांच हजार रुपया मांगेगा अथवा कुछ भूमि । परन्तु बाटनके स्वार्थ त्यागको देखिये कि वह अपने लिये कुछ नहीं मांगता, मांगता है तो यह कि अंग्रेज़ जो यहां व्यापार करने

आते हैं, उनसे महसूल न लिया जाय और उन्हें प्रत्येक स्थान पर बिना रोक टोक व्यापार करनेकी आज्ञादी जाय। उस समय यह बात साधारण जान पड़ी परन्तु इस थोड़ेसे स्वार्थ त्यागका फल अंग्रेज़ोंका राज्य हो गया। भारत चाहे निकम्मा हो गया परन्तु अब भी जैसा उपज और जैसा अन्न जल इस देशका है, किसी दूसरे देशका नहीं। स्वयं भूखा रहकर संसार को तृप्त करना भारतका ही काम है, इसलिये जहां स्वयं स्वार्थ का त्याग करो, आने वाली सन्ततिको भी यही पाठ पढ़ाओ॥

हिन्दुओंमें से छांटे हुए आर्य्य समाजी हैं। जितना पुरुषार्थ और उत्साह इनमें है दूसरोंमें नहीं, परन्तु इनमें भी स्वार्थ त्याग थोड़ा है अन्यथा यह सम्भव न था कि आर्य्य समाज वर्ष भरमें एक मनुष्यभी पैदा न कर सकता॥

स्वार्थ त्यागके चार अर्थ हैं १) आत्मा (२) धन (३) जिन बातोंसे आत्मा परमात्माको प्राप्त हो (४) जिन बातों से निर्भयता प्राप्त हो। स्वार्थ त्याग करने वालोंमें यह चार गुण आजाते हैं॥

एक गंवार मट्टी के ढेलोंसे पक्षियोंको उड़ा रहा था। खेतमें से उसे पत्थरके चमकदार टुकड़े मिले, वह उन्हीं टुकड़ों से पक्षियोंको उड़ाने लगा; केवल एक पत्थर हाथमें रह गया, वह उसे घरले आया। रास्तेमें जवाहरीने उसे देख लिया, उसने कहा कि इसका मोल लेलो। पूछा क्या दोगे, जवाहरी ने पांच हज़ार बतलाया। गंवारने कहा मैं ले तो यही लूंगा परन्तु यह बतलाओ कि इसका वास्तविक मूल्य क्या है। उस ने कहा पांच लाखमें भी यह सौदा सस्ता है। उस समय गंवार

की आंखें खुल गईं और वह हाथ मल २ कर रोने लगा कि मैंने अज्ञानवश होकर इस प्रकारके सैकड़ों पत्थर फेंक दिये॥

यही दशा इस समय हम लोगोंकी हो रही है, हमारे मस्तिष्कों पर आवरण आया हुआ है। पुण्य कर्म्मोंसे यह मनुष्य जन्म मिला है हम उस गंवारकी न्याईं इसे व्यर्थ फेंक रहे हैं, समय आयगा जब आंखें खुलेंगी, परन्तु उस समय कुछ न बन पड़ेगा क्योंकि यह अल्प आयु समाप्त हो चुकी होगी। इस लिये उचित है कि स्वार्थका त्याग करके मनुष्य जीवनके वास्तविक उद्देश्यको पूरा करें। आपका जन्म सुधरेगा और आने वाली सन्तान आपका यशगान करेगी॥

ऋषिका तप।

संसारमें कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसके करनेका साधन तप सिद्ध न हुआ हो। मनुष्यके जीवनमें तप ही सार है इसके बिना मनुष्यका सम्पूर्ण पुरुषार्थ व्यर्थ है। तप ही निर्बलोंको बलवान बनाता है और पतितों को फिर प्रतिष्ठाके मार्ग पर चलाता है। तप ही की सहायतासे महात्मा लोग दुखित लोगोंको संकटसे बचाते हैं, यही कारण है कि उनके नाम सूर्य्यकी न्याईं संसारमें जगमगाते हैं। जिसके प्रभावसे महात्मा बुद्धके आगे संसारने शीश झुकाया, जिसकी शक्तिसे शङ्कराचार्य्यने वेद विरुद्ध नास्तिक मतको दबाया, जिससे ऋषि दयानन्द जी महाराजने वेदोंका सत्य मार्ग संसारको दिखाया, वह तप ही तो है॥

कहां तक कहें जितने महात्मा महानुभाव व भद्र पुरुष

संसारमें हुए, हैं और होंगे, जिनका उद्देश्य कष्ट उठाकर भी जनताको हित और अहितका मार्ग दिखाना होता है वे सब तपस्वी ही होते हैं॥

परन्तु यह बात इसमें आवश्यक है कि सुधारकके जीवनमें जितना अंश तपका अधिक होता है उसका किया हुआ कार्य्य उतना ही फलता फूलता जाता है॥

सृष्टिकी उत्पत्ति भी ईश्वरके तपो बलके आधीन है जो उसकी सत्तामें विद्यमान है। इस विषयमें उपनिषदोंकी साक्षी है, नक्षत्र मण्डल की रचना जिस तपोबलके आधीन है उसकी महिमाको सर्व साधारण नहीं जान सकते कोई योगी ही जान सकता है, आओ तनिकाविचार करें, हमारी दृष्टिमें हिमालय पर्वत सबसे बड़ा प्रतीत होता है, परन्तु कुछ ज्ञान दृष्टिके बढ़नेसे यह भूगोल जिस पर हम बसते हैं हिमालयकी उसके सामने कोई स्थिति नहीं रहती नारंगी। पर जो छोटे छोटे परमाणु उभरे होते हैं उनमेंसे एकके बराबर हिमालय हो गया। भूमण्डल महान् प्रतीत होने लगा, परन्तु आगे चलकर जब सूर्य्य मण्डल पर ज्ञान दृष्टिका अधिकार हुआ जो भूगोलसे तेरह लाख गुनाके लगभग है, भूमिकी वही स्थिति होगई जो भूमिके आगे हिमालयकी थी। अब जब विचार का एक पग और आगे बढ़ा, अनन्त भूगोल सूर्य्य और कोटानुकोटि तारा गण इस बृहद् आकाशके गर्भमें लटकते और घूमते हुए अपने स्वामीके भयसे मर्य्यादाका पालन करते और उसके गुण गाते हुए उस जगदीश्वरकी सत्ता महिमा और विभूतिका स्मरण दिला रहे हैं।

जब उसकी उपासना और भक्तिसे योगीका अन्तः-करण विशाल हो जाता है तो यह आकाश जिसमें कोटानु-कोटि तारागण लटकते हुए देख पड़ते हैं एक सूईके छिद्रके बराबर दिखाई देने लगता है, यह योगीका परम स्थान है, मनुष्यकी उच्चतम डिगरी है, परन्तु यह उसीको प्राप्त हो सकती है जो तपो बलको धारण करता है। तपके प्रभावसे जब मल और विक्षेपका अभाव होजाता है तो आत्माका निजका बल जो दुष्ट संस्कारोंसे दबा हुआ था निर्मल हो कर सत्कर्म्मोंके अनुष्ठान, सत्सङ्ग और अनुभवसे शनैः शनैः विस्तार पकड़ने लगता है। इस प्रकार तपस्वीका अन्तःकरण सद्गुणोंका केन्द्र हो जाता है।

मनुष्यका आकार तो एकसा है परन्तु मनुष्यका आचार अच्छा बनाने के लिये मनुष्यको तपकी बड़ी आव-श्यकता है। जहां तप है वहां ओजवर्च्चस और तेज विद्यमान है, ऐसी सामग्रीको पाकर मनुष्य अपने आपको परोपकार करने के लिये सहानुभूति के मार्ग पर खड़ा कर देता है।

परन्तु पूर्व जन्म कृत सत्कर्म्मोंकी सहायता और ईश्वर की कृपाके बिना ऐसी शक्तिका प्रगट होना सम्भव नहीं। जब ईश्वरकी कृपा और पूर्व जन्म कृत सत्कर्म्म मनुष्यके सहायक होते हैं तब ही ऐसी शक्ति प्रगट होती है।

जिस प्रकार बरसनेके समय बादल पृथ्वीकी ओर उसकी तप्त बुझाने और फल फूल उगानेके लिये झुक झुक कर बरसते हैं, इसी प्रकार अविद्यासे प्रमाद और आलस्यमें फंस कर उस जगदीश्वरको भूले हुए लोगों को फिरसे परम

पिता परमात्माकी उपासनाकी विधि सिखाने और उल्टे मार्गसे हटानेमें पूर्णतया तपस्वीका आत्मा झुक जाता है।

इसलिये तपस्वी वह है जो पहले सद्गुणोंको प्राप्त करता और पश्चात् आयुके दूसरे भागमें जगतको उन्हीं गुणोंसे युक्त बनानेमें यत्न करता है और कीर्ति को प्राप्त करता है, काम क्रोध लोभ मोह अहंकार ही मनुष्यको गिराने वाले गुप्त शत्रु हैं, जो मनुष्य इनको अपने अनुकूल बना लेता है वह तपस्वी है और जो उनके अनुकूल हो जाता है वह तप हीन बुद्धि मलीन हो जाता है। तपस्वी ऋषि दयानन्द जी महाराजके पवित्र चरित्रकी विचित्रता पर ध्यान दें, कामना यदि थी तो सबके हितकी थी, स्वार्थ नाम मात्रका भी न था।

शारीरिक बल रखने पर भी गालीका उत्तर गाली। ईंट पत्थरका उत्तर ईंट पत्थर से न देकर भी बारम्बार उनके हितकी चिन्ता करना क्रोधसे रहित होनेका प्रमाण है, लाखों की आमदनीके स्थान मिलने पर सच्चाईके आगे उनको तुच्छ समझना उनके लोभ रहित होनेका परम प्रमाण है।

परमेश्वरका स्मरण और उसकी प्राप्तिके लिये सुख सम्पन्न घरको छोड़ देना वीत राग का पूरा प्रमाण है, अहंकार न होना इस बात से स्पष्ट है कि अनाथोंकी रक्षा, पतितों का उत्थान, निरभिमान पुरुषोंके बिना कौन कर सकता है। ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होने पर भी अनुचित अभिमानमें फंसी हुई ब्राह्मण जातिका पक्षपात न करना, गुण कर्म्मोंकी प्रधानता से सबसे उच्च पानेका अधिकारी मानना अहंकारके न

होनेके प्रमाण है, ऐसे महात्मा ही संसारके सुधारक हो सकते हैं। सज्जनो ! अब उनके जीवन चरित्र पढ़ो, और उसके अनुकूल कार्य्य करो, यही मार्ग तुम्हारे आत्माको उच्च बना सकेगा ॥

ऋषि जीवन से शिक्षा।

सज्जन पुरुषो ! संसार की अवस्था बड़ी विचित्र है। कभी कभी समय ऐसा विप्रीत होजाता है कि मनुष्योंके जीवनके लिये हानिकारक होजाता है। इस समयकी विचित्रताको आप देखें, मनुष्योंके अन्तःकरण कैसे व्याकुलतासे पूर्ण हो रहे हैं विपत्तियोंके साथ मनुष्य समाजका समागम हो रहा है।

तीन प्रकारके दुख।

तीन प्रकारके दुःख होते हैं (१) आधिदैविक (२) आधिभौतिक (३) आध्यात्मिक।

(१) समय पर वर्षा न होने और वज्र पात आदिसे जो दुःख होते हैं, वे आधिदैविक कष्ट होते हैं। (२) आधिभौतिक कष्ट वे होते हैं जो मनुष्यों से मनुष्यों को होते हैं जैसे किसी मित्र व सम्बन्धीके मरणसे जो दुःख होता है वह आधिभौतिक कष्ट है। (३) मोह शोकादि से जो कष्ट होता है वह आध्यात्मिक दुख है।

मनुष्योंकी भूलोंसे इस समय तीनों प्रकारके दुख हमारे देशमें विराजमान हैं और यह परंपरासे चले आरहे हैं। जब मनुष्य परमेश्वरकी शक्तिसे पृथक होजाते और उस

परमात्माकी उपासना दिखला कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने लग जाते हैं तो उस समय यह तीनों कष्ट विराजमान होजाते हैं।

दुख दूर कैसे हों?

प्रकाशके न होने से अन्धकार विद्यमान है, जब तक प्रकाश न लाओगे अन्धकार विद्यमान रहेगा। प्रकाशके लाते ही अन्धकार भाग जायगा। इसी प्रकार परमात्माको भुला देनेसे यह सब कष्ट आते हैं। जब परमात्माका स्मरण करके उसके साथ सम्बन्ध जोड़ोगे, सम्पूर्ण दुख अपने आप दूर हो जायँगे। इस समय विश्वभरमें जो व्याधि फैल रही है और जिससे चारों ओर हा हा कार मचरहा है, उसको दूर करनेके लिये भी पुरुषोंको उचित है कि वे परमात्माके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ें उससे विमुख होने से ही नाना प्रकारकी व्याधियां फैलती हैं।

ऋषि जीवन और मनुष्य जीवनका भेद।

आज जो कुछ कथन करना है वह ऋषि दयानन्दके विषयमें है। जब हम उनके जीवन पर दृष्टि डालते हैं, तो पता लगता है कि उनका उपक्रम और उपसंहार कैसा विचित्र है और हममें और उनमें कितना भेद है। परमात्माने सब मनुष्योंको एकसी शक्तियां दी हैं,जो उनको संभाल कर रखता है उसपर ईश्वरकी दयालुता नहीं कह सकते किन्तु वह प्रसन्न देख पड़ता है और जो उन दी हुई शक्तियोंको नहीं संभालता उस पर ईश्वरका क्रोध नहीं कह सकते परन्तु वह दुखी जान

पड़ता है। बात सीधी है, जो जिसकी आज्ञाका पालन करता है, वह उस पर प्रसन्न है और उसकी छाया उस पर पड़ती है। जिसने ईश्वरकी आज्ञाका साङ्गोपाङ्ग पालन किया है, वह ईश्वरकी प्रसन्नताका पात्र वन जाता है। संसारमें तीन प्रकार के जीवन दिखाई देते हैं, एकवे लोग हैं जो अपने जीवनसे सैकड़ों मनुष्योंको सुखी बनाते हैं, दूसरे वे जो अपने जीवन से सैकड़ोंको दुखी बना देते हैं, और तीसरे वे जो न सुखी और न दुखी बनाते हैं। जो अपने जीवनसे लोगोंको सुखी बनाते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जिन्होंने परमात्माकी आज्ञाका पालन किया है, ऐसे मनुष्य उस जलते हुए दीपककी न्याई हैं जो अपने शरीरसे सैकड़ोंको प्रकाशित करता है। स्वाभाविक दीपकको तीक्ष्णसे तीक्ष्ण वायु बुझा नहीं सकता परन्तु कृत्रिम दीपक थोड़ेसे वायुसे बुझ जाता है। इसी प्रकार ऋषियोंका जीवन परमात्मासे लिया होता है उसको बाहरकी शक्तियां बुझा नहीं सकतीं, परन्तु मनुष्योंके जीवन पर प्रत्येक बाहरकी शक्ति अपना प्रभाव डालती है। मैंने ऋषिके उपक्रम और उपसंहारके विषयमें कहा था उपक्रम आरम्भ और उपसंहार समाप्तिको कहते हैं। जिसका आरम्भ और समाप्ति आदि और अन्त अच्छा हो तो यह अवश्य है कि उसके जीवनका मध्य भागभी सत्कर्म्मोंमें व्यतीत हो। हममें और ऋषियोंमें यही भेद है, ऋषि लोग जब पग उठाते हैं तो उसी ओर चलते हैं जिसकी समाप्ति नेकी पर हो, परन्तु हम लोग अन्धा धुन्ध॥

आप जानते हैं कि स्वामीजी के कार्य्यका आरम्भ परमात्माकी खोज और उसकी प्राप्ति से होता है, और उनके

जीवनका उपसंहार परमात्माके चिन्तनमें होता है। आदि और अन्तको देखकर हम कह सकते हैं कि उनके जीवनका मध्य भागभी नेकीमें व्यतीत हुआ होगा। यदि मध्य भाग किसी दूसरी ओर खर्च होता तो यह असम्भव था कि अन्तिम भाग भगवानके स्मरणमें व्यतीत होता॥

पुनर्जन्मका दृष्टान्त।

पुनर्जन्मका दृष्टान्त लेलो। जब बालक उत्पन्न होता है तो एक प्रकारके स्वप्नसे वह जागता है। उसे अपने स्वप्नकी सब बातें याद होती है, परन्तु यह शक्ति नहीं कि उनका वर्णन कर सकें, इस अवस्थामें अपने पुरातन संस्कारोंको स्मरण करके कभी रोता और कभी हंसता है परन्तु जब बड़ा होता है और बोलनेकी शक्ति आती है तो मोह मायामें फंसकर पुरानी सब बातोंको भूल जाता है। गीतामें कहा है "यम् यम् वाऽपि स्मरण भावम्" मृत्युके समय जिस बातका ध्यान आता है उससे प्रभावित होता हुआ जीव उसी जन्मको धारण कर लेता है॥

उपनिषद् में भी ऐसा कहा है, कि मरण समय में जैसा मन का संकल्प होता है, जीव वैसी ही योनियों में जाता है। जिस प्रकार इस जगत् में हम लोग पहला घर नहीं छोड़ते जब तक दूसरा न लें इसी पकार जीव जब तब दूसरा चोला न बन जाय पहले चोले को नहीं छोड़ सकता।

ऋषि जीवन की विलक्षणता।

एक सेठ लाखों रुपये लगा कर मकान बनवाता है

मकान बनते ही वह मर जाता है। मरते समय उसको बहुत समझाया जाता है कि आप परमात्मा की ओर ध्यान करो, परन्तु बारम्बार उसका ध्यान मकान की ओर ही जाता है, किसी का ध्यान अपनी सन्तान की ओर जाता है। स्वामीजी ने कई समाजें बनाईं, कई पाठशाला खोलीं, संसारके उपकारके लिए और कई काम खोले, परन्तु मृत्यु के समय उन्हें किसी का ध्यान नहीं आया। ध्यान आया तो उस परम परमेश्वर का जिसकी प्राप्ति के लिये कार्य्य आरम्भ किया था।

" भस्मान्तᳫँशरीरं " वेद ने भी यही समझाया है, कि हे मनुष्य! शरीरके वियोगके समय उचित नहीं कि तू संसार के धन्धों में फंसे, इस समय परमात्माका स्मरण कर जिसको भूलकर जन्मके चक्र में पड़ा था और जिसको प्राप्त करके फिर उस चक्र से छूट सकता है परन्तु हम लोग इस बातको भूल जाते हैं, ऋषि नहीं भूलते॥

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव का समय।

जिस प्रकार धूम्रकेतु कभी कभी संसार पर चमकते हैं, उसी प्रकार मुक्त आत्मा परमात्माकी आज्ञासे संसारके उपकारके लिये कभी कभी आते हैं। स्वामी दयानन्द ऐसे ही एक मुक्त आत्मा थे जिनको परमात्माने संसारके उपकारके लिये भेजा॥

स्वामीजी से पहले देशकी क्या अवस्था थी, इसका अनुमान आज नहीं लग सकता। वेद शास्त्रोंका जानने वाला कोई नहीं रहा, संस्कृतके पण्डितोंसे यदि कोई वेदका अर्थ

पूछता तो वे कहते, इनका अर्थ कुछ नहीं। देशमें चारों ओरसे अंधकार छाया हुआ था, ऐसे समय स्वामी दयानन्द का जीवन किसने बनाया? स्पष्ट कहसकते हैं, परमात्माने, किसी मनुष्यकी शक्ति न थी।

स्वामी दयानन्दका स्वप्न।

मधुबनमें एक साधूने मुझे स्वामीजीके जीवन की एक घटना सुनाई जिसको सुनकर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि स्वामीजीने जो कुछ किया वह परमात्माकी प्रेरणासे किया। साधुने बतलाया कि जब स्वामीजी विद्या समाप्त कर चुके तो उन्हें प्रचार का विचार हुआ परन्तु संसारके विरोधके भयसे वे इस विचारको छोड़ बैठे। उसके थोड़े ही दिन पश्चात् उन्हें स्वप्नआया, कि वे नदीके तीरपर विचर रहे हैं, दूरसे उन्होंने एक नौका आती देखी जिसमें कुछ मनुष्य मदिरासे उन्मत्त हुए हुए राग रंग उड़ा रहे थे, और नौका को अन्धाधुन्ध समुद्रकी ओर ले जारहे थे। कुछ दूर तक स्वामीजी भी नौका के साथ साथ तीर पर चलते गए, अन्तमें जब उन्होंने देखा कि अब ज्वारभाटा दूर नहीं रहा तो स्वामीजी ने उन लोगों को पुकारा, कि तुम किधर जारहे हो। नौका वालोंने उत्तर दिया कि हम इस नदीका अन्त देखने जारहे हैं। स्वामीजी ने कहा कि अब समुद्र बहुत थोड़ी दूर रह गया है यदि आगे गए तो नौका डूब जायगी इसलिये तुम्हें उचित है कि वापस चले जाओ। शराबीयोंने कहा कि हमने तुम्हारे जैसे कई साधु देखे हैं तुम हमारे रंगमें भंग डालना चाहते हो, जाओ जहां हमारा जी चाहेगा जाएंगे तुम्हें क्या? स्वामीजी ने उन्हें

फिर समझाया परन्तु वे नहीं माने । अब उन्होंने सोचा कि यह तो मानते नहीं और ज्वारभाटा बिलकुल निकट है यदि नौका और आगे बढ़ी तो सब डूब जाएंगे इसलिये इनकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, यह सोचकर स्वामीजी नदीमें कूद पड़े । ज्योंही स्वामीजी ने नौकाको हाथ लगाया, उन्होंने ईंट पत्थर लाठी और गालीयां स्वामीजी पर बरसानी शुरु कीं, परन्तु स्वामीजीने इसकी कुछ पर्वाह न करके अपने बल से नौकाको तीर पर लगाया और फिर उन्हें डांट कर बोले, कि अब तुम तीर पर पहुंच गए हो यदि तुमने फिर नौकाको नदीमें चलाया तो एक एकको पकड़ कर पीट डालूंगा । इस प्रकार उनका डांटना था कि सबकी बुद्धि ठिकाने आगई । इसके पश्चात् स्वामीजीकी आंख खुल गई । कई दिन स्वामी जी इस स्वप्न और संसार की अवस्था पर विचार करते रहे। अन्तमें उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे मुझे कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े, मैं अपने उपदेशोंसे इस घोर अन्धकारको दूर करूंगा ।

स्वामीजीसे पहले अवस्था क्या थी? संस्कृतके पण्डित तो विद्यमान थे परन्तु वैदिक ज्ञानसे सर्वथा शून्य थे । दूसरी ओर साईंसका ज़ोर, जब कोई पुराणों पर शंका करता तो निरुत्तर हो जाते । यदि उनको स्वामीजी सहारा न देते तो परिणाम क्या होता, पुराणोंको उन्होंने मानना ही न था और वैदिक ज्ञान से वे कोरे ही थे, ईसाई होते व मुसल्मान ।अब यदि इतना बड़ा विद्वान दल हममेंसे निकल जाता तो शेष क्या बचता । इसलिये स्वामीजीने पुराणोंकी गाथा छुड़ा

कर वैदिक ज्ञान दिया और साहस दिया कि वे निर्भय होकर साईंससे संग्राम करें। जहां साईंसका अन्त होजाता है वहांसे वैदिक ज्ञानका आरम्भ है।

एक आक्षेप और उसका उत्तर।

आक्षेप किया जाता है कि जहां कहीं स्वामीजीको अपने प्रयोजनकी बात नहीं मिली झट कह दिया यहां मिलावट है। यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। आजसे तीन वर्ष पूर्व गोसाईं तुलसीदासजी अपनी रामायणमें लिखते हैं कि धर्म पुस्तकोंमें भी मिलावट की गई। तुलसी रामायणमें भी मिलावट हुई और आज कल्ह जो रामायण छपती है उसमेंसे प्रक्षिप्त श्लोक निकाल दिये जाते हैं।

देखिये गोसाईंजी क्या कहते हैं:—

हरित भूमितृण संकुला, लिप्त हुए सब ग्रन्थ।

यह तीन सौ वर्ष पूर्व की साक्षी है। स्वामी जीने सत्यार्थ प्रकाशमें लिखा है, कि महाभारतसे एक सहस्र वर्ष पूर्व आलस्य प्रमाद आने लग गया था, गीता सबकी साक्षी देती है। कृष्ण कहते हैं "हे शूरवीर अर्जुन! जिन वेद शास्त्रों के अनुसार चलकर आर्य्य जाति विद्वान और शूरवीर होती है उनका प्रचार दिन प्रतिदिन घट रहा है।" इससे सिद्ध हुआकि स्वामीजीकी एक एक बातका मूल विद्यमान है।

स्वामी जी पक्षपात रहित थे।

एक वार रेलमें एक मौलवी बड़ी प्रतिष्ठाके साथ स्वामीजीका नाम लेकर कह रहा था कि स्वामी दयानन्दके

इसलामको कुव्वत मर्दी या ब्रह्मचर्य्यकी तालीम देकर उस पर बड़ा येहसान किया है, दूसरेने कहा कि उन्होंने तो कुरान का खण्डन किया है और तुम उनकी तारीफ कर रहे हो। पहला मौलवी बोला, भाई स्वामी दयानन्द बे तअस्सुब आदमी था, जिस आदमीने अपने घरके पुराणों और दूसरी किताबों का खन्डन किया, उससे यह उम्मीद रखना कि वह इसलामके नुक़स को ज़ाहर न करे यह फ़िजूल है॥

सच्चा उपदेष्टा।

कपिल ऋषि ने कहा है कि उपदेश करने वाला और सुनने वाला यदि यह तीनों मर्य्यादानुसार रहें तो संसार धर्म मार्ग पर चलता है अन्यथा अन्ध परम्परा चल जाती है। भारत वर्ष में आज कल अन्ध परम्परा चल रही है, जो चाहता है नया पन्थ खड़ा कर लेता है, और लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं। महर्षि कपिल उपदेश करने का अधिकार केवल जीवन मुक्तको देते हैं। जीवन मुक्त कौन? जो जैसा उपदेश करे वैसा ही अपने ताईं सिद्ध करे, काम क्रोध लोभ मोह अहंकार उसके निकट न आये, स्तुति निन्दामें एक रस रहे॥

स्वामी दयानन्दके जीवनमें हम देखते हैं कि कभी इन दोषोंसे दूषित नहीं हुए। लोग स्वामीजी को गालियां देते थे परन्तु वे उनके साथ प्रेम करते थे॥

सत्यके वे कितने प्यारे थे इसके कई उदाहरण उनके जीवन चरित्रमें मिलते हैं वे निरुपम प्रत्युत्पन्न मति थे। एक वार वे नग्न शरीर पौष मासमें प्रातःकाल नदीसे घूमकर आ-रहे थे। रास्तेमें कलक्टर साहब मिले और उनसे पूछा, महा-

राज आपका जिसम नंगा है आपको सर्दी नहीं लगती।
स्वामीजीने उत्तर दिया कि पहले तुम बतलाओ कि तुम्हारा मुंह नंगा है तुम्हें सर्दी क्यों नहीं लगती। कलक्टर साहबने उत्तर दिया, क्योंकि हमेशा नंगा रहता है इसलिये सर्दी नहीं लगती। स्वामीजीने कहा तुम्हारा मुंह नंगा रहता है हमारा सारा शरीर नंगा रहता है।

आत्मश्लाघा।

पिप्पलाद ऋषिके पास छे ऋषि जाकर जीवन और मृत्युके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं ऋषि उत्तर देते हैं :-

ब्रह्मचर्य्यम्।

पहले एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य धारण करो, फिर मेरे पास आओ, यदि मुझे तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर आता होगा तो देदूंगा। शंकराचार्य्य पिप्पलाद ऋषिके सम्बन्धमें लिखते हैं कि पिप्पलाद ऋषिमें यह सामर्थ्य थी, कि जो कुछ उनसे पूछा जाता वे बतलाते परन्तु इस विचारसे कि कहीं अहंकार उनके निकट न आने पाये, उन्होंने उत्तर दिया कि यदि मुझे उत्तर आता होगा तो दूंगा।

कनौजमें किसीने कहा, स्वामी जी आप ऋषि हैं, स्वामीजीने उत्तर दिया कि आपलोग जो चाहे कहें परन्तु यदि ऋषियोंके समयमें मैं होता तो उनकी पाठशालाका एक विद्यार्थी होता।

एक वार फ़रुखाबादके हिन्दुओं और आर्य्योंमें लड़ाई हुई। अभियोग चल पड़ा, आर्य्योंने स्वामीजीको कहा कि आप साक्षीदें। स्वामीने कहा यदि मुझसे किसीने पूछा तो

जो कुछ मैंने देखा है कहदूंगा। आर्य्योंने पूछा कि आप क्या कहेंगे। उत्तर दिया कि मैं यह कहूंगा कि इस लड़ाईमें दोष आर्य्योंका है। वे लोग कहने लगे कि तब तो हम मारे जायेंगे और समाजको हानि पहुंचेगी। स्वामिजीने कहा, चाहे तुम मारे जाओ, चाहे समाज न रहे, मैं तुम्हारी खातिर अपने आत्माका हनन नहीं कर सकता।

जीवन मुक्त पुरुष और हममें भेद यह है कि उन्होंने काम क्रोधको जीता हुआ होता है परन्तु हमने नहीं।

ऋषिका अन्तिम स्वीकार क्या था।

दीवालीके दिन जब ऋषि मृत्यु शय्या पर पड़े हुए थे, पचास साठ मनुष्य उनके पास थे जब मृत्युका समय निकट आया स्वामीजीने सबसे पहले कहा "कुछ प्रकाश कुछ अन्धेरा" इसका अर्थ जहां तक मैं समझा हूं यह था, कि दीपमालाकी रात्रि अन्धेरी होती है, और लोग इस रात प्रकाश करते हैं तो कुछ रात अन्धेरा रहता है और कुछ प्रकाश। अथवा इसका अर्थ यह समझलो कि ऋषिके उपदेशोंसे कुछ लोगोंको प्रकाश होगया है और कुछ अन्धेरमें हैं, पता नहीं लोग अन्धेरेकी ओर पग बढ़ाएंगे व प्रकाश की ओर।

(२) ऋषिने दूसरी बात यह कही कि सब मेरे पीछे खड़े हो जाओ। इसका अभिप्राय यह था कि स्वामीजीका लक्ष्य उस समय केवल एक परमात्मा था, वे अपने सन्मुख किसी दूसरी वस्तुको नहीं चाहते थे। दूसरा अर्थ यह है कि स्वामीजीने उस समय कहा कि अब मैं तो नहीं रहूंगा तुमने मेरे मार्ग का अनुसरण करना।

(३) ऋषिने तीसरी बात यह कही, कि सब दरवाज़े खोलदो, पूछा गया, ऊपरका भी, उत्तर मिला ऊपरका भी खोलदो, चारों ओर दरवाज़े तो सांसारिक सुखके लिये, और ऊपरका दरवाज़ा परमात्माकी ओर लेजाने वाला है, अथवा यह तात्पर्य्य समझलो कि हिन्दुओंने सबके लिये दरवाज़े बन्द कर रखे थे, स्वामीजीने अन्तिम वसीहत अन्तिम स्वीकार यह किया कि सबके लिये दरवाज़े खोलदो। वैदिक धर्म मुसलमान ईसाई सबके लिये खुला रहना चाहिये।

मृत्यु समयमें स्वामीजीने यह तीन उपदेश दिये। मरते समय जो बात कही जाती है वह अपूर्व फल रखती है, क्योंकि वह मृतककी कामना होती है, इस अन्तिम वसीहत को प्रत्येक आर्य्यके हृदयमें स्थान मिलना चाहिये।

यदि आज हम स्वामीजीके दर्शन करना चाहें तो नहीं कर सकते, परन्तु सत्यार्थ प्रकाशमें उन्होंने अपने विचारोंको प्रगट कर दिया है, उसका स्वाध्याय करनेसे उनके साथ बात हो सकती है। ऋषियोंके ग्रन्थोंको पढ़नेसे हम ऋषियोंके मार्ग पर चल सकते हैं।

पण्डित गुरुदत्तजी स्वामीजी की युक्तियोंसे निरुत्तर हो जाया करते थे, परन्तु मन नहीं मानता था कि परमात्मा सचमुच कोई है। परन्तु ऋषिका मृत्युका दृश्य देखकर सब संशय मिटजाते हैं, इनको साक्षात् हो जाता है कि सचमुच कोई परमात्मा है। ऋषि क्यों हंसते हुए प्राणदेते हैं, इसका दृष्टान्त देता हूं॥

एक मनुष्य गढ़ा खोद रहा था खोदते खोदते कुदाल

उसके पाओं पर लगी, बड़ा गहरा घाव हो गया और रक्त की धार बहने लगी, पीड़ासे वह व्याकुल हो रहा था कि मिट्टीमें उसने एक छोटीसी पोटली बन्धी देखी। उठा कर देखा तो उसमें कुछ सोनेकी मोहरें बन्धी थी सब दुखोंको भूलकर घरको दौड़ा और आकर चारपाई पर लेट गया। आपने देखा कि कठोरसे कठोर यातना हर्षके सन्मुख तुच्छ होजाती है इसी प्रकार ऋषिके सन्मुख मृत्युके मुकाबिले में जब आनन्द स्वरूप परमात्मा होते हैं तो वे प्रसन्नता पूर्वक शरीरको छोड़देते हैं आप भी यत्न करो, कि जगतमें रोते आओ और हंसते जाओ। आपके सन्मुख ऋषि दयानन्दका आदर्श है जिसने हंसते हुए कहा था "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" और प्राण त्याग दिये थे।

जो बल दयानन्दमें था वही बल आपमें आना चाहिये, और यह तब हो सकता है जब कि आप ऋषिके अन्तिम वचनों उनकी अन्तिम वसीयत पर चलेंगे॥

सत्संगकी महिमा।

नित्य नियम् में दृढ़ता।

सज्जन पुरुषो! हमारे शास्त्रों में सत्संग की बड़ी महिमा वर्णन कीगई है। जबसे हम लोगों ने सत्संगको छोड़ा, नाना प्रकारके दुःख उठा रहे हैं। जितने ऋषि मुनि महात्मा इस देशमें हो चुके हैं वे सत्संगके प्रतापसे। सत्संगके न होने से हम छोटी छोटी बातोंको बड़ा समझ रहे हैं। माता पिताकी आज्ञा पालना प्रत्येक पुत्र और पुत्रीका कर्त्तव्य है परन्तु आज

इसमें बड़ा महत्व समझा जारहा है। जब रामचन्द्रजी की माताने उनसे पूछा कि क्या आप पिताका कहा मानेंगे ? तो उनको बड़ा क्रोध आया और कहा कि क्या कोई ऐसा पुत्र भी है जो पिताका कहा न मानें। आज जो दोनों समय सन्ध्या करता है वह फूला नहीं समाता, परन्तु यह कोई विशेष महत्व की बात नहीं जिस प्रकार रोटी खाना आवश्यक है उस प्रकार परमात्मा का स्मरण भी आवश्यक है अपने नित्य नियममें प्राचीन आर्य्य लोक किस प्रकार तत्पर रहते थे, इसका एक उदाहरण देता हूं। महाराज रामचन्द्रके भेजे हुए हनुमान जब लंकामें पहुंचते हैं और उन्हें जानकी जी नहीं मिलतीं तो वे वाटिकाके पास नदी पर पहुंचते हैं, और मन में यह भाव है कि यदि जानकी जी जीती हैं तो अवश्यमेव वे सायं समय सन्ध्या करनेके लिये नदी तट पर आएंगी, मृत्युमें तो संशय है परन्तु सन्ध्यामें संशय नहीं॥

कुसंग और सत्संग।

इन दिनोंमें लोग आम चूसते हैं परन्तु स्वाद नहीं आता क्योंकि उनमें अभी मिठास नहीं आई, परन्तु जब वर्षा हो जायगी वे स्वादिष्ठ हो जाएंगे। यही नियम मनुष्य जीवनका है। सत्संग रूपी अमृतको पाकर मनुष्य धर्मात्मा बनजाता है, कुसंगसे केवल अपना आपही नहीं वरंच जन समूहके नाशका कारण होता है। जिस प्रकार वायु मट्टीको ऊपर लेजाता है परन्तु जल उसको कीच बनाता है, ठीक इसी प्रकार सत्संग मनुष्यको ऊपर उठाता है और कुसंग मट्टीमें मिलाता है।

किस तरह कुसंग मनुष्य को गिराता है, इसका दृष्टान्त

अभी मुझे रेलमें मिला। एक मनुष्य गाड़ीमें सिगरिट पीना चाहता था, वह दियासलाई सिगरिटको लगाता परन्तु वह वायुसे बुझजाती। दो तीन बार उसने ऐसा किया परन्तु काम न बना, अन्तमें वह टट्टी में गया और वहां जाकर उसने सिगरिट को जलाया। टट्टी जाते समय तो लोग नाक और मुंह पर कपड़ा रखते हैं परन्तु सिगरिटका कुसंग उसको टट्टीमें लेगया है।

शास्त्रोंमें कहा गया है कि सत्संग कुसंगसे रहित हो कर करो। पन्द्रह सेर हलवा में यदि एक तोला विष मिला दिया जाय तो सारा हलवा विष होजायगा, परन्तु एक तोला विषमें पन्द्रह सेर हलवा मिला देनेसे भी विष हलवा नहीं बनेगा, खोटेका कुसंग भले मनुष्य पर भी विपत्ति लेआता है।

हंस और काक एक वृक्ष पर इकट्ठे रहते थे। काक बड़ा ही कुटिल जन्तु है, वह मनमें हंससे द्वेष रखता था और प्रगटमें उसकी मित्रताका दम भरता था। एक दिन मदयाहनके समय एक यात्री वृक्षके नीचे आकर सो गया कुछ समयके पश्चात् उस पर धूप आगई हंसने देखा कि थका मांदा यात्री पड़ा है धूपकी गर्मीसे वह शीघ्र जाग उठेगा, उसने अपने परोंको पसार कर उस पर छाया कर दी, यात्री को विश्राम मिलगया। काकने भी उसको देखा और मनमें सोचाकि आज हंससे प्रतिकार लेनेका अच्छा अवसर है, उसने हंसके नीचे होकर यात्रीके मुंह पर बींट कर दी और उड़ गया। गर्म गर्म बींटका पड़ना था कि यात्री की निद्रा खुल गई और उसने देखा कि हंस पक्ष पसारे वृक्ष पर बैठा है। उसे क्रोध आया कि इसने मेरे मुंह पर बींट कर दी है,

तुरन्त उठा और बंदूक मारकर मार दिया। आपने देखा कि किस प्रकार कुसंगके कारण भलाईका वदला बुराईमिला।

सत्संगकी संसारमें बड़ी न्यूनता होरही है। लोगोंके हृदयोंमें धर्मके लिये श्रद्धा नहीं रही जो प्राचीन कालमें थी। आप उपदेश सुन रहे हैं, तनक सी खड़ खड़ाहट कहीं हो आप भागने को तय्यार हैं। परन्तु एक समय महात्मा बुद्धका उपदेश होरहा था, इतने में भूचाल आगया कई मकान गिर गए परन्तु जो लोग उपदेश सुन रहे थे उन्होंने हिलने का नाम नहीं लिया।

एक कविने सत्संग और कुसंग पर बहुत अच्छा कहा है:—

सत्संग और कुसंगमें वड़ा अन्तरा जान।
गांधी और लोहारकी देखो बैठ दुकान॥

लोहारकी दुकान पर उष्ण लोहकी चिंगाड़ीसे आप बच नहीं सकते. इसी प्रकार गांधी की दुकान पर बैठनेसे चाहे आपने इतर ना ही लेना हो, सुगन्धि अवश्य ही आपके मास्तिष्क को सुवासित करेगी। यही सत्संग और कुसंगम में अन्तर है।

सत्संगसे लाभ।

सत्संगसे क्या लाभ होता है, इसको शास्त्रकारोंने बड़े विस्तारसे वर्णन किया है, परन्तु एक दो साधारण बातें बतलाकर मैं अपने भाषणको समाप्त करूंगा। पहली बात—

"जाड्यम् धियो हरति"

सत्संग बुद्धिको निर्मल और सूक्ष्म बनादेता है। लोग पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नहीं देता। उपनिषदोंमें बतलाया है कि वह दिखाई देता है परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे

खांड मट्टीमें मिल गई, आपसे वह पृथग् नहीं हो सकती, क्योंकि आपके पास इतना सूक्ष्म शस्त्र नहीं, परन्तु च्यूंटीआं इसको क्षण भरमें पृथक कर देंगी । ऐसी ही सत्संगी पुरुष की बुद्धि निर्मल होजाती है ।

दूसरा लाभ सत्संगसे यह होता है:—

"सिञ्चति वाचि सत्यम्"

सत्संगसे वाणीमें सच्चाई आजाती है । इसलिये कहा है:—

जहां सच वहां आप, जहां झूठ वहां पाप ।

आजकल महात्मा शब्द की बड़ी मट्टी खराब होरही है । पार्टीयां और दलबंदीयां अपने अपने मनुष्योंको महात्मा की उपाधियां दे रही हैं परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि जिस पुरुषका मन वाणी और कर्म एक है वह सच्चा महात्मा है । जिसके मनमें कुछ और दिखलावेके लिये कुछ और वाणीमें कुछ और, तथा अपने स्वार्थके लिये कुछ और होता है वह दुरात्मा होता है । अब आप सोचलो कि इनमेंसे कितने महात्मा हैं ? थोड़ी थोड़ी बात बात पर झूठ बोल देते हैं, सच और झूठकी पहचान नहीं रही । आजकल बहुतसे झूठ पालिसीके नाम पर बोले जाते हैं । यह सारी बुराईयां सत्संगसे दूर होसकती हैं । तीसरा लाभ—

"मनोनीतम् द्रष्य"

लोहा जलमें डूब जाता है परन्तु काष्ठके साथ लगनेसे तैरने लगता है । इसी प्रकार बुरेसे बुरा मनुष्य सत्संगसे भला बनजाता है । बाल्मीकका दृष्टान्त आपके सन्मुख है । वह बाल्मीक जो दिन रात डाके मारा करता था. एक साधके

सदुपदेशसे सुधर गया और जब तक संस्कृतकी एक भी पुस्तक शेष हैं उसका नाम अमर रहेगा। कहा है।

"सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्"

उपदेशक प्रत्येक व्यक्ति पर किसी विशेष समय पर अपना प्रभाव डालता है। सहस्त्रों उपदेश सुने जाओ, कुछ फल नहीं होता, परन्तु एक समय ऐसा होता है जब साधारणसी बातसे मन पर चोट लगजाती है और उसका प्रभाव होजाता है। अभी मैं मिठा टिवारणमें गया। उपदेश करते हुए साधारण रीतिसे मैंने मांस भक्षणका निषेध किया और कहा कि इसका खाना धर्मके विरुद्ध है। उसी समय वहां का एक रयीस खड़ा होगया और हाथ जोड़कर कहने लगा कि महाराज मैं आजसे मांस खाना छोड़ता हूं और साथ ही हुक्का भी छोड़ता हूं। परन्तु यहां कितना ही मांसके विरुद्ध कहा गया, असर नहीं हुआ। परन्तु समय आवेगा जब यही उपदेश इनके आत्मा पर भी चोट लगायेगा।

एक पुरुषकी दूसरी स्त्री सदैव उसकी पहली स्त्रीके पुत्रके विरुद्ध उसको भड़काया करती थी, उसका विचार था कि यदि यह मरजाये तो मेरा पुत्र एक दिन सारी सम्पत्ति का अधिकारी होगा। नित्यकी कहा सुनीसे पति पर असर होगया और वह एक दिन अपने पुत्रको मारनेके लिये खेतमें साथ लेगया। अब उसको साहस न होता था कि वह अपने आत्मज को किसी छुरी व तलवारसे मारदे, चाहता यह था कि किसी प्रकार वह हलके नीचे आजाय और बिना किसी प्रकार की निर्दयताके मर जावे। छोटा सा बालक उसके

आगे पीछे फिरता और उसका पिता हलको बार बार उसकी ओर लाता। घण्टा डेढ़ घण्टा इसी प्रकार करता रहा कि इतनेमें उसका हल एक छोटेसे पौदेसे जा लगा। बालक चिल्लाया कि पिता जी! हलको इस ओर मत लाओ। पिता ने कारण पूछा, उसने बतलाया कि नन्हा सा पौदा उखड़ जाएगा। पिताने कहा फिर क्या होगा और पैदा हो जायगा बालकने कहा दूसरेका उगना निश्चित नहीं है परन्तु जो उग चुका है वह तुम्हारे हलसे उखड़ जायगा। इन शब्दोंसे पिताके चित्त पर बड़ी गहरी चोटलगी और उसने अपने पुत्रको उठाकर गलेसे लगा लिया और घर आकर अपनी स्त्री को ऐसा डांटा कि फिर उसने कभी बालकके विरुद्ध न कहा।

एक और उदाहरण देकर फिर आगे चलता हूं। एक डाकू सदैव मुसाफिरों को मारा करता था और उनका माल अस्बाब लूट लिया करता था। एक दिन एक महात्मा पुरुष घोड़े पर सवार उधर से जारहा था। डाकुने कहा कि अपना घोड़ा मुझे देदो और यदि तुमने कहीं दूर पहुंचना है तो मेरा ऊंट तुम लेलो, परन्तु वह न माना। तब डाकुने कहा कि अब तुम सावधान रहना मैंने यह घोड़ा अवश्य ले लेना है। यह कहकर वह दूसरे रास्ते से होकर रोगी साधुका वेष बना कर रास्तेमें पड़गया और हाय हाय करने लगा। इतने में वह महात्मा भी वहां पर आपहुंचा। साधुको इस प्रकार तड़पता देखकर उससे न रहागया, उसने साधु से पूछा कि आपको क्या कष्ट है? उत्तर मिला कि मैं पेट दर्द से मर रहा हूं। महात्मा ने कहा कि आप मेरे घोड़े पर चढ़ जाएं, मैं आपको

हस्पतालमें छोड़ आता हूं। साधु ने कहा कि मुझसे हिला नहीं जाता, महात्माने उसे अपनी पीठ पर चढ़ाकर घोड़े पर बैठा दिया। ज्योंही वह घोड़े पर चढ़ा, उसको एड़ी लगाई और महात्मासे पचास गज़ दूर हो अपने वास्तविक वेषमें आकर कहा, क्यों भाई घोड़ा लेलिया कि नहीं। उस समय तो ऊंट लेकर भी घोड़ा नहीं देता था। उसने कहा निस्सन्देह तुमने घोड़ा लेलिया और उसे वापिस भी नहीं मांगता, परन्तु एक बात मेरी अवश्य मानना। डाकुने कहा वह क्या? उत्तर दिया कि किसी को कहना नहीं कि हमने साधुका वेष बनाकर घोड़ा लिया है वर्ना नेकीका दरवाज़ा सबके लिये बंद हो जायगा। अच्छे से अच्छे साधु को भी लोग डाकू होने की शंका करेंगे। सुतरां इन शब्दोंने डाकु के हृदय पर चोट लगा दी और वह हाथ बांधकर खड़ा होगया। घोड़ा वापस देदिया और कहा कि मुझे कुछ और भी उपदेश कर जाओ। इसीलिये उपदेश हर समय और हर स्थान पर दिया जाता है न जाने किस समय किस पर प्रभाव पड़ जावे। इधर के लोगोंसे तो सत्संग दूर हो चुका है, ब्रह्मामें अभी तक धर्म प्रबल है।

वहां एक पुरुषका युवा पुत्र मर गया। तीन चार दिन निरन्तर उसको रोता पीटता देख कर उनके कुछ पड़ोसी आए और उनसे अपना रुपया बड़ा ज़ोर देकर मांगने लगे। वह आश्चर्य्य में था कि एक तो पुत्रके मरनेका दुःख और दूसरा इन रुपया मांगने वालोंकी ओरसे दुःख। उसने कारण पूछा, उत्तर मिला कि तुम रुपया मुकर जाने वाले प्रतीत होते हो, परमात्माने तुम्हारे पास वह लड़का इमानतके तौर पर भेजा

था, उसको आवश्यकता हुई उसने अपनी इमानत वापस लेली, अब तुम तीन चार दिनसे रो रहे हो । जब परमात्माकी इमानत देने पर तुमने इतनी दुहाई मचाई है तो हमारी इमानत तुम क्यों देने लगे हो । यह कहना था कि सारा परिवार चुप हो गया, उन्हें शान्ति आ गई, यह है सत्संग । आवश्यकता है कि फिरसे तुम लोग सत्संग चढ़ाओ ॥

आर्य्य-समाज विपत्ति को बुला रहा है ।

आर्य्य-समाजने संसारको सत्संगके झण्डे तले लाना था, परन्तु यह अभागा स्वयमेव घेरलु झगड़ों में फंस गया । जिधर जाओ इसके आपसके झगड़ोंकी चर्चा सुन पड़ती है । परन्तु स्मरण रखो आर्य्य समाज बड़ी भारी विपत्तिको बुला रहा है, निश्चय रखो, इस पर घोर विपत्ति आयगी और उस समय परस्पर समस्त विरोधी शक्तियां मिल जायेंगी, परन्तु उस मेलसे कुछ न बन सकेगा ।

बंगालमें एक बार जलका एक भारी हड़ आया । बहुत से मकान, अनेक मनुष्य और बहुतसे पशु वह गये । परन्तु जलके मध्यमें एक ऊंचे स्थान पर एक नेवला, सर्प, गाय, सिंह, बिल्ली, कुता और एक अजगर, एक मनुष्य और इसी प्रकार के कई एक विरोधी जन्तु इकट्ठे हो गए । अब नेवला सर्पकी ओर आंख नहीं उठाता, सिंह गायकी ओर नहीं देखता, अजगर मनुष्य की ओर नहीं लपकता, विपत्तिके समय उन सबका द्वेष भाव दूर हो गया था, परन्तु इस मेल मिलापसे कुछ लाभ नहीं क्योंकि सबकी शक्ति नष्ट हो चुकी है ।

इसी प्रकार आने वाली विपत्तिके समय यदि आर्य्य

समाजकी पार्टियां आपसमें मिल बैठीं तो इससे क्या लाभ । उनके घरेलु झगड़े तो आर्य्य समाजको शनैः२ पहले ही निर्बल बना देंगी । इसलिये आओ, अब भी हट जाओ और इस विपत्ति को न बुलाओ ।

कैसी पुस्तकोंसे सत्संग किया जाय ।

सत्संग महात्माओंके वचनों द्वारा ही नहीं होता उनके लेख द्वारा भी होसकता है । एक राजाका मन्त्री छे मासकी छुट्टी लेकर बनमें चला गया । वहांसे उसने कुछ समय पश्चात् राजाको पत्र लिखा कि मैं शान्तिकी गंगामें नित्य स्नान करता हूं और महां मुनि पातञ्जलि और गौतमसे सत्संग करता हूं । राजाको आश्चर्य्य हुआ कि पातंजलि और गौतम कहां? यह उसने झूठ लिखा है । वह स्वयं उसके मिलने के लिये गया, जाकर देखा तो उसका मन्त्री बनमें एक कुटिया बनाकर वास कर रहा है । एक दो दिन उसके पास रहकर राजाने पूछा, कि यह बात तो ठीक है कि आप शान्तिकी गंगामें नित्य स्नान करते हैं परन्तु पातञ्जलि और गौतमका संग कहां? मन्त्रीने तुरंत आलेमेंसे योग और न्याय शास्त्र निकाल कर राजाके सन्मुख रख दिये, और कहा कि बत-लाइये आप पातञ्जलि और गौतमसे क्या पूछते हैं । यह है पुस्तकों का संग, परन्तु आजकलके नवयुवक नावल और इसी प्रकारकी अन्य पुस्तकें पढ़कर अपने बल और वीर्य्यका नाशकर रहे हैं । सदैव ऐसी पुस्तकोंको पढ़ो जिनसे जीवन बनता है ।

एक महात्मा ऋषि दयानन्दने सत्संग लगाया, उसी

का फल है कि इस रात बीसीयां स्थानों पर सत्संग हो रहा है। यह सत्संग ऋषि दयानन्दका सत्संग है। गाड़ी ऐञ्जिन नहीं बन जाती, परन्तु ऐञ्जिनके साथ लगनेसे गाड़ीकी गति बहुत तेज़ हो जाती है। इसी प्रकार हम यदि ऋषि न भी बनसकें तो ऋषियोंके सत्संग से हमारे धर्मात्मा बननेमें सन्देह नहीं रहता। इसलिये हमें चाहिये कि ऋषि दयानन्दके पीछे चलें, इससे आपका यश होगा और आने वाली सन्तान सुधरेगी।

आत्मिक बल।

सबसे पहले एक प्रश्न समझ लो, तो मेरे भावको फिर आप भली भान्ति जान जाएंगे। समुद्रके ऊपर बहुतसे जहाज़ चलते हैं, एकको तूफानने घेर लिया, वह अपने मार्ग से दस बीस मील किसी दूसरी ओर भटक गया। जब तूफान शान्त हो गया तो उसके कप्तानको क्या सोचना समझना चाहिये, पहला कर्त्तव्य यह है कि मेरा जहाज़ जिस स्थान पर था वहांसे कितनी दुर हट गया है। यदि इस बातको ठीक जान लिया तो अपने उद्देश्य पर पहुंच गया और जो बिना विचार जहाज़ चला दिया, सम्भव है कि मार्ग पर भी आ जाय और यह भी सम्भव है कि सैंकड़ो मीलों की भूल कर जाय।

भूले हुए जहाज़के केन्द्रकी स्थितिको पहले समझना फिर चलाना होता है। इसी प्रकार संसार सागरमें भूली हुई जातियां हैं। यह देखें कि कहांसे भूली थी, यदि इसका

विचार नहीं करती तो अटकती हैं, सहस्रों वर्षका प्रयत्न भी एक पग आगे नहीं बढ़ा सकता। प्रयत्न, धनका खर्च और सैंकड़ों उपायोंका फल कुछ नहीं निकलता।

शास्त्रने उदाहरण दिया है, लोग कुत्तोंसे शशकका आखेट करते हैं। जिनको दुष्ट व्यसन पड़ गए हैं वे हरिणोंके पीछे कभी भेड़िया लगा देते हैं। हरिणोंका एक यूथ है, भेड़ीये उस पर पड़ते हैं, दूसरा भेड़ीया गढ़ा खोद कर छपकर अन्दर बैठ जाता है, कोई हरिण उस ओर आया जहां भेड़ीया छिपकर बैठा है, हरिण व्याकुल हुआ हुआ कुछ नहीं जानता अब उसको अधिक शोक दुःख और पश्चाताप होता है व्याकुल होता है। यदि भागनेका प्रयत्न करे और अपनी बुद्धिको स्थिर रखे तो दोनोंसे बच सकता है, परन्तु घबराकर कूदता ऊपरको है और फिर नहीं गिरता है जहांसे कूदा था घण्टा भर प्रयत्न तो किया परन्तु अज्ञानसे मारागया।

इसी प्रकार संसार की जातियां जब अज्ञानसे चेष्टा करती हैं तो सहस्रों वर्षके प्रयत्न निष्फल होजाते हैं।

ऋषिने सत्यार्थ प्रकाशमें बताया था कि "जब भाई भाईसे लड़े, वैमनस्य होजाय तो वहां नाश होनेके सिवाय और क्या आशा है" दुख है तो यह कि जिन्होंने प्रेम सिखलाना था उनके विचारोंमें एकता नहीं है। हममें ऐसे वृद्ध नहीं देख पड़ते जो इस उलझनको खोलदें, यह निराशा है।

स्वामीजी कहते हैं, कि महाभारतमें दुर्य्योधनके दुष्ट भाव से परस्पर युद्ध हुआ और भारत देशमें वैर भाव फैला और

आज तक चला आता है। पता नहीं इसका पीछा छोड़ेगा। अथवा रसातल को पहुंचा देगा।

फिर यदि आर्य्य समाजमें अनैक्यकी ज्वाला बढ़ती है, तो फिर शेष क्या रहा । इस वैरको ही तो उठाना था शेष कौनसी वस्तु यहां नहीं थी, परन्तु स्वयं वैरमें पड़ गए। यह है निराशाकी बात और सब आशा ही है।

अड़तालीस वर्षोंमें आर्य्यसमाजके प्रचारसे ऋषि दयानन्दके विचारोंने संसारमें तो पल्टा दे दिया । जिन ईसाई और मुसल्मानोंकी यह आशा पड़ती कि एक शताब्दिमें हिन्दु जाति को हम अपने अन्दर बांट लेंगे आज वे घरके अन्दर विचार करते हैं कि आर्यसमाज हमको छोड़ेगा या नहीं।

अब देखना यह है कि हमारी भूल कहां पर है। केवल एक शब्दको भली भांति समझो तो सब पता लग जायगा।

देखो एक "यज्ञ" शब्द आता है। जहां यज्ञ परमात्मा का वाचक है, दूसरे स्थल पर पुरुषके साथ मिले हुए आत्मा का नाम यज्ञ है, तीसरे स्थान पर यज्ञ शब्द शुभ कर्मोंका वाचक है। एक और वेद मंत्रमें यज्ञ शब्द आया है जहां पुरुषके सुधारका वाचक है । फिर पितृ यज्ञ देव यज्ञमें कर्मका वाचक कहा है॥

प्रेम किनका होता है, जिनके गुण और स्वभाव समान समान हों, यदि आप अपने आपको यज्ञ बनालो तो आत्मिक बल बढ़ जाता है, फिर जो करो वही होगा॥

बलवान आत्मा बलवान शरीरको चाहता है, आप अपने आपको यज्ञ बनानेका यत्न करो, फिर आप उस यज्ञ

स्वरूप परमात्मासे मिल जाओगे।

वेदमन्त्र कहता है "आंखको यज्ञ बनाओ" एक कविने कहा है कि "हे भगवन्! दूसरे के अपवाद करने से दूसरेकी निन्दा करनेसे मुखमें दोष आजाता है, नेत्र परस्त्री पर कुदृष्टि डालनेसे दूषित होजाता है और चित्त दूसरेकी हानि सोचने से दूषित होगया, मार्ग सबबिगड़ गए, फिर मनुष्ययज्ञ कैसे बना। परमात्मासे इस प्रकार भेंट नहीं होसकती। आंखसे देखकर कैसे दोष उत्पन्न होते हैं? एक जन्तु आपके सामने से जाता है, एक मनुष्य उसे देखकर सोचता है कि परमात्मा की सृष्टिमें कैसे सुन्दर जन्तु हैं। दूसरा सोचता है कि इसका मांस बड़ा स्वादिष्ट है। भाव दोनोंके भिन्न भिन्न हैं और इसीसे कार्य्योंमें भूल होजाती है। मनुजी कहते हैं, जब मनुष्यका भाव अच्छा नहीं तो चाहे वेद पढ़लो, यज्ञ करलो, सब दूषित हैं। यदि भावमें सच्चाई है तो सब कुछ ठीक है।

आजसे कुछ दिन पहले तोप बन्दूक चलती थी अब नहीं, यह भी चित्तके भावकी बात है इसीलिये कहा है कि "मनको यज्ञ बनाओ"।

फिर कहा है कि यज्ञको यज्ञ रूप बनाओ अर्थात् अच्छे कर्म्मोंको भी यज्ञ बनाओ। ज़िला बदायूंमें एक नक़ल नवीस रिश्वत लेता था उसने आर्य्यसमाजके सत्संगसे घूस लेना छोड़ दिया। परन्तु उसने किया क्या कि काम करनेवालों से बोलता ही नहीं। उसके अन्दर अभिमान आगया कि मैं घूस नहीं लेता। निकाला तो कुत्तेको और बांध लिया गधेको, उचित तो यह था कि बोलता। और घूस लेने वालोंकी न्याई

और घूस न लेता। इस प्रकार करता तो संसार को अच्छा आदर्श देता। इसलिये कहा है कि भले कर्म्मोंसे जो बड़ाई होती है उसे भी निष्काम और ईश्वर अर्पण करदो।

अपने आपको यज्ञ बनाओ। इसीलिये सन्ध्या करनेका समय रखा हुआ था। कई कहते हैं कि प्रातःकाल पूर्व और सायंकालमें पश्चिमकी ओर मुख क्यों करें। स्मरण रहे कि आपको श्रद्धा रखनी चाहिये। भूमि में बोया बीज और प्रातःकाल ही जाकर देखा कि उगा है व नहीं। डाक्टरने फोड़े पर पट्टी बांधी, आपने घर जाकर खोली और देखने लगे कि पका है व नहीं क्या ऐसे पकेगा।

श्रद्धाका तन्तु मृत्युसे अभय कर देता है, बलवान बनादेता है, इसलिये आप सायंप्रातः अपने आपको यज्ञ बनानेका यत्नकरो। यह दोनों काल विचारके लिये रखे हुए थे। सूर्य्यकी ओर क्यों बैठें, संकेत से बतलाया है कि हे मनुष्यो! तुम विद्या और प्रकाशकी ओर खड़े रहो। यदि प्रकाशकी ओर पीठ देदी तो छाया सामने होगी, तुम्हारे सामने फिर प्रकाश नहीं प्रत्युत अन्धकार होगा। सायंकाल फिर सूर्य्यकी ओर ही मुख करो। और बतलाओ तो सही, जब कभी कोई मित्र आता है तो उसकी अगवानीके लिये उसकी ओर मुख करते हो अथवा पीठ देते हो। ऐसे ही जब गाड़ी आती है तो सब उसकी ओर ही देखते हैं और जब जाती है तो भी लोग उसीकी ओर देखते हैं। फिर सायं-काल और प्रातःकाल ही सन्ध्या क्यों?

देखो इसको समझो:—

जो प्रश्न कहीं सिद्ध नहीं होता वह अलजबराको समानताकी श्रेणीमें सिद्ध होजाता है। इसी प्रकार सांझ और सबेरा समानताकी श्रेणीके समय हैं। किसीके स्वत्वका हनन न करना समानता है। एक मनुष्यको घोड़ेने पड़ाव पर पहुँचा दिया,अब सवारका कर्त्तव्य है कि अपने खाने पीने का प्रबन्ध पीछे करे पहले घोड़ेके चारेका करे यह है समानता।

संसारसे वैर विरोध हट जाएंगे यदि आपके मनमें समानताका भाव आजायगा। उपनिषद् में लिखा है कि मनुष्यके शरीरमें दो शक्तियां हैं, रयी और प्राण। दिनके समय प्राणकी शक्तिबढ़ती है, रात्रिको रयीकी बढ़ती है। जैसे रयीकी शक्ति रात्रिको बढ़ती बढ़ती प्रातःकाल हुआ तो प्रातःकालको रयी और प्राणकी शक्ति सम होजाती है, वैसे ही सायं कालको दोनों शक्तियोंके सम होजानेसे जो सोचो,सोच लोगे। परन्तु सोचे कौन, उस समय तो उठता ही कोई नहीं।

आपकी कभी समवृत्तितो होती ही नहीं। जो जहाज़ चलते हैं उनका नियम है, वहां एक कम्पास होता है उसकी सुई हिलादो वह फिर भी ध्रुवकी ओर होजायगी। उसके बनाने वालेने चाहे कोई नियम रखा हे, परन्तु योगके जानने वाले कहते हैं, कि जितने तारे हैं सब चलायमान हैं और ध्रुवके गिर्द घूमते हैं और वह खड़ा रहता है इसीलिये कम्पास की सूई इस ओर ही ठहरती है॥

चित्तकी वृत्ति भी सुई है। यह किधर ठहरे? जो स्थिर स्वभाव परमात्मा है, जब उधर जायगी तो ठहर जायगी। जगत्‌के पदार्थ तो चलायमान हैं, वहां ठहर नहीं सकती और

इसके ठहरानेका समय वही था जिससे पुरुषार्थ और उत्साह बढ़ जाता है। एक माताकी ओर आंख उठानेसे बुरा भाव उत्पन्न होगया तो क्या समझते हो कोई विकार न लायेगा, अवश्य लायेगा। चित्तके स्थिर और समान न रहनेसे भारी कुकर्म होते हैं। इसीलिये कणाद ऋषि ने नियम बतलाया है कि अविद्या मनुष्य से सब प्रकारके पाप करवाती है, और यह इन्द्रियोंके मार्गसे संग दोषसे आती है॥

इन्द्रियोंको वशमें लाना कठिन है और सब काम सुगम हैं। एक कमान्डरन् चीफ़ सेनाको जीतकर आया और एक कन्याके रूपको देखकर मोहित होगया। वह कन्या आर्या थी कहती है, हे सेनापति! वह तेरी तलवारका बल जिससे तू सैकड़ोंको काटता था, वह तेरा ओजस्वीपन तो मेरे एक कटाक्षके देखने से नष्ट होगया, तनक सोच तो सही। एक मनुष्य हस्तिके दन्तको उखाड़ने, सिंहको मारने, सर्पोंको हाथों से मार देने में समर्थ है परन्तु इन्द्रियोंके वश करनेमें असमर्थ होता है, तू कहता कि तूने लाखोंको जीता है और मैं कहती हूं कि मैंने तुझको जीता है। कप्तानकी बुद्धि ठिकाने आगई। मनुष्य है, जो मनुष्यके काम करे॥

एक फ़ारसीका कवि कहता है :—

"एक तरफ़से देखूं तो किरोड़ों आदमी नज़र आते हैं लेकिन दूसरी तरफ़से देखूं तो कोई भी नहीं॥"

मनुष्य वह है जिसने अपने आत्माका बल बढ़ाया है, जैसे महर्षि महानुभाव दयानन्द थे, बल देखो तो पूरा, विद्वान तो पूर्ण, संसारके सुधारोंको देखोतो पूर्ण, जितेन्द्रियतामें पूर्ण॥

मनुष्य अपने आपको सब कुछ बना सकता है। एक ऋषिके पास मांडसक राजाने कहा भगवन्! मेरी कन्या विवाह के योग्य हुई है। ऋषिने कहा पुरुषसे विवाह करो। राजा कहता है, यह आपने क्या कहा है, पुरुषोंके साथ ही तो विवाह होता है॥

ऋषिने कहा, "संसारमें सब पुरुष नहीं, पुरुषके चित्र हैं"

देखो यदि अपने आपको बनालो तो अच्छा है अन्यथा यह तो न करो कि बने हुए कार्यको बिगाड़ते चले जाओ। जिसको बना नहीं सकते हो उसको बिगाड़ो तो नां॥

कवि कहता है:—"प्रातःकालका वायु पुष्पेक सन्मुख जाते हुए लजाता है क्योंकि उसकी पंखड़ीयोंको खोलकर सुगन्धिको तो फैला दिया परन्तु पंखड़ीओंको इकट्ठा नहीं कर सकता और सुगन्धि वापस नहीं ला सकता॥

अब तो आपकी निद्रा खुल चुकी है और बेसुधी नहीं है आपने स्वयमेव सिद्धकर दिया कि हमारे पुरखा बहुत बड़े थे॥

उल्टा समझ लेनेसे जीवन उलट गया, ऐसे ही यज्ञ शब्द को ठीक न समझ सकनेसे हम बिगड़ गए। पितृयज्ञके अनर्थसे आपाधापी पड़गई। स्वामीजी महाराज सद्वैद्य साधुने रोगका यत्न बता दिया सब कुछ बतला दिया, प्रत्येक काम क्रम पूर्वक बता दिया, कौनसी बात है जो उन्होंने न बतलाई हो, परन्तु आप हैं कि उस पर चलते नहीं। अनुष्ठानके बिना कुछ लाभ नहीं होता॥

प्रमाद न करो दुःख उठाओगे। समय अच्छा है, साधन अच्छे हैं, अपने आपको जितेन्द्रिय बनाओ। इन्द्रियोंको वश में कर लेनेसे मनुष्यकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। मनुजीने कहा

है कि जितेन्द्रिय बननेका विचार करो, इन्द्रियों को वशमें करो। विषयोंके जालमें न फंसो। यदि यश शब्दको सोचना और बनाना चाहते हैं तो इन्द्रियोंके प्रत्येक मार्गको ठीक करके उन्हें वशमें लेआओ। जितना मनुष्य वीर्य्यवान होगा उतना ही सुन्दर होगा और रोग रहित होगा, सन्तान भी बलवान् होगी इसलिये अपने आपको वशमें रखो। यदि नहीं रखते तो कविका वाक्य सुनो जो कहता है "पहले पापोंका फल पा रहे हो फिर भी मूर्खताके वशमें होकर उन्हीं पापोंके गम्भीर जलमें जाते हो और अपनी ग्रीवा पर मन भरकी शिला बांध रहे हो" व्याख्यान केवल सुननेके लिये नहीं, उपदेश जीवनमें लानेके लिये होते हैं। सिंहके समान भारत सन्तान, इस देशमें दूधकी नहरें, धन धान्यका घाटा नहीं। अंगूर खानेको, ताजे मक्खन, शुद्ध वायु, जल वायु सुन्दर, इस देशके लोगोंकी यह दशा हो जाय, जैसे गर्मीका मारा हुआ आम होता है। "हे परमात्मन! हमें बलदो, और हमारे विचार शुद्ध हों" उल्टे विचारोंका फल उल्टा होरहा है इससे बचाओ॥

यत्न और उद्यम करोगे तो सब कुछ मिलेगा। कविने कहा है:—

रञ्जसे सब कुछ मिले बिन रञ्ज कुछ मिलता नहीं।
ग़ोता ज़नको ग़ोता बिन मोती नहीं मिलता कहीं॥

———

संसार यात्रा।

भद्र पुरुषो ! संसारमें जिस प्रकार जो यात्री मार्ग पर चलता हुआ अपने उद्दिष्ट स्थानकी ओर मुंह किये हुए है, वह जितने पग सीधे उठाता है उतना ही वह अपने उद्दिष्ट स्थान के निकटतर होता जाता है यह बात स्वयं सिद्ध है, इसी प्रकार यह बात भी निर्विवाद है कि यदि उस यात्रीका पग अपने उद्दिष्ट स्थानकी ओर जानेके स्थान उल्टा पड़ जाए, तो वह जितने पग उठाएगा उतना ही उद्दिष्ट स्थानसे दूर होता जायगा। ठीक यही अवस्था संसार यात्रामें जीव आत्माकी है। मनुष्यके लिये प्राप्त करनेके योग्य स्थान परमेश्वर है अथवा उसके सुख, जिस प्रकार एक यात्री अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुंचनेका यत्न करता है। उसी प्रकार एक जीवात्मा परमात्माको प्राप्त करना चाहता है, प्रत्येक मनुष्यकी यह इच्छा है। परन्तु इन सब प्रयत्न और इच्छाओंके होते हुए भी परमेश्वरकी प्राप्तिमें असमर्थ रहता है। उसे सुख प्राप्त नहीं होता, इसका कारण क्या है ? कारण यह है कि हम परमेश्वरकी प्राप्तिका जो मार्ग है उससे उल्टे जा रहे हैं, ठीक मार्गसे दूर जारहे हैं, यही कारण है कि परमेश्वर और सुखकी प्राप्तिके हमारे सम्पूर्ण प्रयत्न निष्फल जारहे हैं। जितना हम सुखकी प्राप्तिका यत्न करते हैं उतना ही वह दूर भागता है, और भागे क्यों न, सुखके पास तो हम जब पहुंचें जब सुखकी ओर हमारा मुंह हो। जब मुख उसके विपरीत होगा तो फिर वही होगा कि—

सर्वे प्रयत्ना शिथिला भवन्ति ।

सारे प्रयत्न निष्फल होंगे और एक समय हम इस अवस्थाको देखेंगे कि हम सुख और परमेश्वरसे बहुत ही दूर होगए हैं। उस समय हमारी अवस्था उस मरणासन्न मनुष्य की सी होगी जो भूमि पर लेट रहा है और लोग आ आकर उसे पूछते हैं कि क्यों पण्डित महात्माजी आप हमें पहचानते हैं कि मैं कौन हूं। जब वह नहीं बोलता तो उसके पाओंको हाथ लगाते हैं, नाड़ी देखते हैं। जब गति सर्वथा बंद हो जाती है तो कहते हैं अब नहीं पहचानता, अब नहीं सुन सकता। ठीक ऐसी ही अवस्था जीवात्माकी परमेश्वरके मार्गसे उल्टा चलने पर होजाती है। जिस प्रकार देखनेकी शक्ति मनके साथ मिलकर पहचाननेका काम करती थी, जिनसे उसका सम्बन्ध टूट जानेसे देखनेकी शक्ति काम नहीं करती तथा श्रवण शक्ति नष्ट होजाती है।

मृत्युके समय मनुष्यमें चेतनता आजाती है। जीवात्मा शरीरको छोड़नेके समय ऐसा क्यों करता है। आपने देखा होगा कि जब कभी कोई बड़ा मनुष्य कलक्टर व छोटा लाट साहब किसी स्थानसे प्रस्थान करते हैं तो सहसा ही नहीं चल देते वरंच एक दो दिन तैय्यारियां करते हैं पहले बाहिर जाकर तम्बू लगाते हैं, मिलने वाले आकर उनसे मिल लेते हैं। सब आवश्यक वस्तुएं तम्बूमें एकत्र की जाती हैं, तब प्रस्थान आरम्भ होता है। इसी प्रकार जब जीवात्मा इस शरीर को छोड़ता है तो वह सम्पूर्ण शक्तियोंको एकत्र करता है। कृष्ण भगवान कहते हैं कि मृत्युके समय अन्तःकरण जैसी

भावनाओंको देखता है जैसे विचारोंको देखता है उन्हींसे प्रभावित होता हुआ उसी ओरको रुख कर लेता है। आप दुकान पर बैठे हैं, आपके मनमें भावना उत्पन्न हुई कि भवन में जाकर लेक्चर उपदेश सुनें, आप दुकानसे उठकर भवनमें आगए। इसी प्रकार दूसरे मनुष्यके मनमें विचार हुआ कि रावी पर चलें और वह रावीकी ओर चल पड़ा। जिस प्रकार जीवित पुरुष अपनी भावनाओंसे प्रेरित होता हुआ सब काम करता है ठीक उसी प्रकारकी क्रिया मृत्युके समय होती है। जैसे विचार व भावनाएं उसके अन्तःकरणमें उत्पन्न होती हैं, उनसे प्रभावित हुआ २ उधर ही चला जाता है।

यह मृत्युका समय हमारे साथ भी सम्बन्ध रखता है। हम संसारमें सदा रहने के लिये नहीं आए, हमको भी कभी इस संसारसे विदा होना होगा। इसके पश्चात् हमारा उद्दिष्ट स्थान क्या है, यदि इस बातका हमको पता नहीं अथवा पता लगानेका हम यत्न नहीं करते तो हमारे समान भूला हुआ और कोई नहीं है। यदि किसी यात्रीसे पूछा जाय कि कहां जाते हो, वह उत्तर दे मुझे पता नहीं, इस अन्धाधुन्धका भी कहीं ठिकाना है भला? ऐसे यात्रीको आप क्या कहेंगे, यही कहेंगे कि वह एक उन्मत्त मनुष्य है।

परमेश्वर हमारा उद्दिष्ट स्थान है। उसकी ओर जानेके लिये आवश्यक है कि हम उन बातोंको न करें जो कि परमात्माकी आज्ञाके विरुद्ध हैं। यही ऋषि लोगोंका नियम है, जिसने परमेश्वरको प्राप्त किया उसे ऋषि कहते हैं।

ऋषि मनुष्य और राक्षस।

ऋषि मनुष्य और राक्षस में केवल इसी ज्ञान का

अन्तर है अन्यथा ऋषि के शरीर पर मोहर नहीं लगी होती, मनुष्य के सिर पर सींग नहीं होते और राक्षस के हाथों पर कोई पहचान का चिन्ह नहीं लगा होता, केवल गुणों के भेद से ही मनुष्यों के यह तीन भेद कहे हैं । ऋषि उसको कहते हैं जो स्वार्थ से रहित होकर केवल सर्व साधारण के हित के लिये ही काम करे, जिसको अपना प्रयोजन कुछ भी न हो, उसका पुरुषार्थ केवल लोगों की भलाई के लिये हो । मनुष्य वह है जिस में लोगों की भलाई के साथ अपना स्वार्थ भी हो । जिस के हृदय में इस नियम की धारणा हो कि मैं मनुष्य समुदाय में रह आप भी सुखी रहूं और लोगों को भी सुख पहुंचाऊं । न उनसे मुझ को कोई दुःख पहुंचे और न मुझ से उनको, मेरा भी बने उनका भी बने । राक्षस वह है जो अपना ही भला सोचे, दूसरों की हानि व लाभ का कोई विचार न हो । अब इन तीनों में से जो केवल लोगों की भलाई का विचार है वह सर्वोत्कृष्ट आदर्श है, परन्तु ऐसा होना कठिन है । यह विचार कि न अपना विगड़े न दूसरे का, मध्यम विचार है जो कि उपरोक्त बात से सुगम है इससे आगे तीसरा नम्बर स्वार्थ में गिना गया है और आज कल यह मात्रा ही बढ़ी हुई है । मेरा रस्सा जाओ तो जाओ परन्तु दूसरे की भैंस अवश्य मरे, यह भाव बड़ा सुगम है क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य के चारों ओर वायु मण्डल छा रहा है । उसी प्रकार चारों ओर यह बुराई का केन्द्र विद्यमान है । बुराई के लिये कोई तैय्यारी की आवश्यकता नहीं है, इसी लिये तो परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवः ।

कान सुनने के लिये एक साधन है, जो बहरा है वह सुन नहीं सकता । यह एक नियम है कि जैसे को तैसा देख पड़ता है, यह कुछ तो ठीक है और कुछ नहीं ठीक । दुष्ट जन को तो सारे दुष्ट ही दिखाई पड़ते हैं परन्तु यह ठीक नहीं कि भले सबको भले देख पड़ें । जिस प्रकार जब मैं बहरे से बात करने लगता हूं, तो बहरा ज़ोरसे बोलने लगता है, इस लिये कि उसको ऊंचा सुन पड़ता है, दूसरोंको भी ऊंचा सुन पड़ता होगा । इसलिये बुरे मनुष्यके विचारमें तो आ जाता है कि सब बुरे हैं । भला मनुष्य भलेको भला और बुरेको बुरा समझता है इसलिये वह परमात्मासे प्रार्थना करता है कि हे परमेश्वर ! हमें कानोंसे सदैव कल्याणको ही सुनें नेत्रोंसे सदा कल्याणको देखें, हे परमेश्वर ! हमारे सब अंग दृढ़रहें जिससेकि हम इस जगत में भी सुखी रहें और परलोकमें भी सुख पावें । जब वेद मंत्रका ऐसा उपदेश है तो हमें जान पड़ता है कि इस प्रकारका सदाचारी बनने पर परमात्मा और सुखकी प्राप्तिका एक मार्ग तो मिलता है । अब सोचो कि वह मार्ग कौनसा है ?

मनके साथ समस्त इन्द्रियोंका सम्बन्ध है । यह सब मनके आधीन हैं, मनकी उपस्थितिमें यह सब काम करती हैं और अनुपस्थितिमें क्रिया शून्य रहती हैं । मनके संयोग न होने पर न कान सुन सकता है न आंख देख सकती है । आप बाज़ारमें किसी विचारमें लीन हुए घूम रहे हैं, पीछेसे आपको किसीने बुलाया परन्तु आपने नहीं सुना क्योंकि

आपका मन दूसरी ओर था। मनके विना कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। मन और इन्द्रियोंके लिये मनुष्य बड़े कठिनसे कठिन कर्म्म कर सकता हैं इसलिये मनको शुभ कर्म्मोंमें डालना तो उद्दिष्ट स्थानकी ओर जाना है और उसे कुकर्म्मोंमें लगा देना अपने लक्ष्यसे विपरीत चलना है। इस संसारमें कोई दुखी और कोई सुखी देखपड़ता है, तो क्या संसारमें अन्याय होरहा है। परमात्मा किसीको भी दुख नहीं देते वे तो सबको सुख ही देते हैं। परन्तु जिसप्रकार सूर्य्यका काम तो प्रकाश उष्णता देनेका है, एक पौदे पर तो उसके प्रकाश और उष्णताका यह प्रभाव पढ़ता है कि वह सूख जाता हैं और दूसरा हरा भरा होजाता है तो क्या इसमें सूर्य्यका दोष है, कदापि नहीं, वरंच जिस पौदे की जड़ में जल और नमी है वह फूलता है और जिसका सूखा है वह प्रकाश और उष्णंताको अनुकूल न पाकर सूख जाता है। इसी प्रकार जो मन से देव भलाईकी ओर जाता है जिस अन्तः करणमें भलाईका बीज विद्यमान है, जो सच्चाईसे प्रेम रखता है, वह संसारमें सुख प्राप्त करता है, और जिसमें बुराई और कपट भरा है वह उसी व्यवस्थाके अनुसार दुख उठाता चला जाता है।

आप फ़ारसीकी पुस्तकोंको पढ़ें, अंग्रेज़ी और संस्कृत के ग्रन्थ देखें, सब एक मत होकर किस बातका वर्णन करते हैं, सबका उद्देश्य एक ही है किः—

"बुरे कर्म्मोंसे हटे रहो"

सब शास्त्रों की यही मर्य्यादा है, परन्तु संसारकी दशा

आज कलहे क्या है, दुःखसे तो बचना चाहते हैं परन्तु दुःख के कारणको छोड़ना नहीं चाहते। सुखकी प्राप्ति तो चाहते हैं परन्तु सुखके कारणको प्राप्त नहीं करते। कर्म तो करते हैं दुःख प्राप्तिके परन्तु चाहते हैं सुख 'यह कैसे होगा ? इसलिये जो मनुष्य बुरे कर्म्मोंसे हट जाता है वही सुख पा सकता है,और दूसरोंके भी कल्याणका हेतु होता है। क्योंकि वह मनुष्य जिस सोसाइटीमें रहता है और जो वस्तु उसके पास होगी वही बांटेगा। यदि बुराई उसके पास होगी तो वह सोसाइटीमें बुराई फैलाएगा और यदि भलाई है तो भलाई फैलाएगा। यह भी नहीं हो सकता कि वह दूसरोंके साथ बुराई करे और उनसे आशा भलाईकी रखे। लुकमानसे उसके स्वामीने कहा कि गेहूं खेतमें बोदो, उसने जाकर बाजरा बोदिया। स्वामीने कहा कि बाजरा बोकर गेहूं कैसे उगेंगे तो लुकमानने उत्तर दिया, श्रीमान्! यदि बाजरेके बीजसे गेहूं नहीं उत्पन्न हो सकते तो आप बुराईका बीज बोकर भलाईकी आशा कैसे रखते हैं। आपके मनमें अथवा मेरे मनमें यह विचार आसकता है कि हम तो कोई बुराई नहीं करते, यह क्यों ? इस लिये कि मुझे अपना दोष प्रतीत नहीं होता। सच्चे मार्ग पर आनेके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी बुराईयोंको जाने अन्यथा छोटी २ बुराईयोंका भी लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आर्य्य-समाजमें झगड़ा है, राय ठाकुरदत्त प्रधान पदको नहीं छोड़ते। मुरादाबादमें "वर्ण व्यवस्था गुण कर्म स्वभावसे है व जन्मसे" इस विषय पर शास्त्रार्थ था। सनातनी पण्डितने कहा कि ब्राह्मण पदकी डिगरी हमारे पिता

पुरखोंकी सहस्रों वर्षोंसे मिली हुई है आप हमसे सहस्रों वर्षों की मिली हुई डिगरीको छुड़ाना चाहते हैं, परन्तु आप दो वर्ष की मिली हुई प्रधानीको नहीं छोड़ते तो हम ब्राह्मण पदको कैसे छोड़दें । देखो यह निर्बलता हमारे अन्दर है जिसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है, जगतने इस पर हमारा पक्षपात नहीं किया ॥

इसलिये हे मनुष्य ! तू अपने दोषों पर दृष्टि डाल । निर्बलताको समझनेकी प्रकृति डाल, यह धार्मिक ग्रन्थोंका उपदेश है । परन्तु हम अपनी दुर्बलताको ही बलं समझ बैठे हैं । दुर्बलता भारत वर्षकी प्रकृतिमें मिल गई है । ज्यों ज्यों भारत वर्ष दुर्बल होता जाता है त्यों त्यों ही दुबलापन एक फ़ैशन बनता चला जाता है, यदि हम दुर्बलताको अपना भूषण समझ लेंगे तो हम उसको क्यों कर छोड़ सकते हैं ॥

जिस समय इस वर्तमान जगतको परमेश्वरने बनाकर सच्चाई और झूठमें अन्तर डाल दिया तो तुमको उचित है कि सत्यसे प्रेम और झूठसे घृणा करो । अब जो मनुष्य इसके विरुद्ध करेगा वह अपने मार्गमें स्वयं संकट उत्पन्न करेगा । मनुष्यको सत्यसे इस प्रकार प्रेम करना चाहिये जिस प्रकार कि ऋषि दयानन्द करते थे । सभा लगी हुई है, ऋषिके मुंहसे एक अशुद्ध शब्द निकल गया । एक छोटासा बालक उठकर कहता है, महाराज ! यह शब्द ऐसा नहीं है । ऋषि स्वीकार कर लेते हैं कि वास्तवमें यह शब्द मेरे मुखसे अशुद्ध निकल गया था । यदि ऋषि चाहते तो उस अशुद्धको भी शुद्ध कर सकते थे, परन्तु सत्यके प्रेमी ऋषिने ऐसा करना उचित न समझा

क्योंकि ऋषि जानते थे कि यदि झूठा हठ आगया तो अन्तः-करण पर झूठकी छाया पड़ जायगी, इस अपनी थोड़ीसी मान हानि पर सत्यके साथ घृणा क्यों करूं। सत्यके साथ प्रेम रखनेके कारण वह तो ऋषि बनगए, परन्तु दूसरी ओर अनु-भूति स्वरूप आचार्य्य वृद्ध थे, बुढ़ापेके कारण उनके मुखसे पशु शब्दके स्थानमें पुंशु निकल गया। लोगोंने कहा कि यह तो अशुद्ध शब्द है, बस इस पर वे मान प्रतिष्ठाके कारण हठ पर आगए और पूरे तीन मास गृहसे नहीं निकले। अन्तमें एक ऐसा ग्रन्थ बनाया जिसमें पुंशु शब्दको ठीक सिद्ध किया परन्तु वह भी अशुद्ध सिद्ध हुआ, परन्तु उसका मन तो अभि-मान और हठके कारण मलीन हुआ। इसलिये मनुष्यको सर्वदा अपने मनको शुद्ध रखना चाहिये और सत्यके साथ प्रेम रखना चाहिये। बुरे कर्म्मोंसे बचनेके लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता है॥

मनमें विमलता, जीवनमें सरलता और शरीरमें सफलता।

यदि आपके शरीरमें बल, मन साफ़, जीवन पवित्र सरल और सादा है तो आप सच्चे हैं यदि आपका जीवन पवित्र नहीं है, मन भ्रष्ट और शरीर बलवान् नहीं है तो आप बुरे कर्म्मोंसे नहीं बच सकते हैं। परन्तु वह तब हो सकता है जब आप वेदोंके उपदेश पर चलें। वेदका उपदेश है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन इत्यादि हे मनुष्य! तू अपने शरीरको यज्ञ बनादे अपने यज्ञको यज्ञ बनादे अर्थात् पुरुषार्थ से अपने कर्ण नेत्र आदि इन्द्रियों को कार्य्य रूपमें परिणत कर, केवल शिक्षा पानेसे ही

काम न चलेगा॥

स्वामीजी महाराज लिखते हैं, संसारका उपकार करना आर्य्य समाजका मुख्य उद्देश्य है उसके पश्चात् उसकी व्याख्या करते हैं कि शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना इसलिये सबसे पहला नम्बर शारीरिक उन्नतिको दिया है, क्योंकि जिसका शरीर दुर्बल है वह संसारका क्या अपना भी उपकार नहीं कर सकता और बलवान उसे दबा लेते हैं। जिनके आत्मा बलवान और शरीर पुष्टहों वेही ऐसे कष्टके समय नेकी और सदाचारका निदर्शन दूसरोंके सन्मुख रख सकते हैं और इसके लिये आवश्यक है कि मनुष्य सब प्रकार की विषय वासनओंसे बचे। जो मनुष्य विषय वासनाओंमें लगा रहता है वह कभी हृष्ट पुष्ट और बलवान आत्मा नहीं हो सकता।

अकड़ ऐंठ अभिमान में, गए हज़ारों वर्ष।
आओ प्रिय मिल बैठिए, जो बढ़े हृदय में हर्ष॥

आओ! जुदाई और द्वेष के सिर राख डालो। मेल मिलाप में आनन्द हो जायगा, भुजाओं में बल आ जायगा, शरीर में शक्ति आ जायगी। यही मार्ग है सुख और शान्ति का भावी सन्तान को बिगड़ने न दो, प्रेम और प्रीति बढ़ाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करेगा।

॥ समाप्त ॥